इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मानविकी विद्यापीठ

BSKLA - 135
संस्कृत भाषा और साहित्य

संस्कृत वाचन और विविध विषय 2
साहित्य का आस्वादन 3

खंड

3

साहित्य का आस्वादन

इकाई 9
पद्यकाव्य 63

इकाई 10
गद्यकाव्य 88

इकाई 11
कथासाहित्य 106

खंड 3 का परिचय

संस्कृत भाषा की प्रकृति, स्वरूप आदि मूलभूत प्रवृत्तियों एवं विविध विषयों के माध्यम से वाङ्मय की एक झलक पाने के उपरान्त इस खंड में साहित्य की विभिन्न विधाओं से परिचय कराया जा रहा है।

इस दृष्टि से इस खंड की तीन इकाइयों में पद्य, गद्य एवं कथासाहित्य के कुछ सुन्दर चुने हुए अंशों के द्वारा आप साहित्य का आस्वादन लेंगे। संस्कृत साहित्य की विशालता से आप परिचित हैं। इस खंड में यह प्रयत्न रहा है कि प्रसिद्ध कवियों की उपयोगी, सरल, सरस एवं शिक्षाप्रद रचनाओं को ही लें।

तकनीकी एवं कठिन शब्दों के लिये इकाइयों में शब्दावली दी गयी है। आशा है साहित्य का यह संकलन आपको ज्ञान के साथ-साथ आनन्द भी देगा।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 9 पद्यकाव्य

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य

9.1 प्रस्तावना

9.2 महाकवि कालिदास : परिचय

9.3 'कुमारसम्भव' महाकाव्य : परिचय

9.4 काव्यांश

9.5 सारांश

9.6 शब्दावली

9.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- काव्य, काव्य के भेदों विशेषकर महाकाव्य के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे;
- संस्कृत वाङ्मय में कालिदास के जीवन-वृत्त, वैदुष्य एवं उनके योगदान से परिचित होंगे;
- कालिदास की कृतियों में 'कुमारसम्भव' का स्थान विशिष्ट महत्त्व का है; आप 'कुमारसम्भव' से दिये गये काव्यांश के आधार पर उसके रचना-सौन्दर्य से परिचित होंगे;
- आप संस्कृत-शब्दों की विशिष्ट प्रयोग-विधि का साक्षात्कार करेंगे।

9.1 प्रस्तावना

इससे पहले की इकाई में आपने खंड 1 और खंड 2 के सभी इकाइयों की जानकारी प्राप्त की। इस इकाई में 'पद्यकाव्य' के विषय में चर्चा की जाएगी। वेद को ईश्वर का काव्य कहा गया है – **''पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति''।** काव्य-अनुशीलन के समय इसके दृश्य व श्रव्य रूप में दो भेद किये गये। जिसमें अभिनेयता की क्षमता हो या जिसके अनुसार अभिनय किया जा सकता हो; उसको दृश्यकाव्य कहा गया। जिसको सुनकर रस लिया जा सके या जिसमें संगीत की क्षमता हो उसे श्रव्यकाव्य कहा गया। श्रव्यकाव्य के महाकाव्य तथा गीतिकाव्य (खण्डकाव्य) के रूप में दो भेद किये गये। दृश्य-काव्य में नाटक आदि लिए गये तथा महाकाव्य में रामायण, महाभारत, कुमारसम्भव, रघुवंश, सौन्दरनन्द, किरातार्जुनीय आदि की गणना की गयी। मेघदूत, ऋतुसंहार, नीतिशतक, गीतगोविन्द आदि तथा अनेक स्तोत्र-काव्य गीतिकाव्य माने जाते हैं।

गद्यकाव्यों में वासवदत्ता, कादम्बरी, दशकुमारचरित, शिवराजविजय आदि रचनायें बहुत लोकप्रिय हुई हैं।

महाकाव्य – संस्कृत साहित्य में महाकाव्यों की परम्परा बहुत लम्बी है। इसमें कथा को सर्गों में विभक्त किया जाता है। एक सर्ग में एक ही छन्द रहता है जबकि सर्ग के अन्त में कुछ श्लोक अन्य छन्दों के होने चाहिए।

शृंगार-हास्य-करुण-रौद्र-वीर-भयानक-बीभत्स-अद्भुत-शान्त-वात्सल्य रसों में से महाकाव्य में शृंगार, वीर या शान्त रस ही अंगी (मुख्य) रस हो सकता है, अन्य रस गौण रूप में रहते हैं। धीरोदात्त गुण वाला तथा उच्च कुल में उत्पन्न व्यक्ति ही नायक होता है। एक महाकाव्य में उच्च-कुलोत्पन्न एक क्षत्रिय या अनेक क्षत्रिय नायक हो सकते हैं। क्षत्रियेतर व्यक्ति भी धीरोदात्त गुणवाला नायक होता है। इतिहास की कोई घटना या किसी सज्जन व्यक्ति का चरित्र कथानक बन जाता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से कोई एक काव्य का फल हो सकता है। इस प्रकार अन्य भी अनेक लक्षण इसके बताये गये हैं।

महाकाव्यकारों में वाल्मीकि, वेदव्यास के पश्चात् कालिदास तथा अश्वघोष माने जाते हैं। अन्य प्रसिद्ध महाकाव्य-रचयिताओं में भारवि, भट्टि, कुमारदास, माघ, शिवस्वामी, क्षेमेन्द्र, श्रीहर्ष, पद्मगुप्त, विल्हण आदि अग्रगण्य हैं।

काव्य के आस्वाद के लिये कालिदासकृत 'कुमारसम्भव' नामक महाकाव्य के पंचम सर्ग का कुछ अंश यहाँ लिया गया है। इस काव्यांश में वर्णित ब्रह्मचारी वेशधारी शंकर एवं शंकर को प्राप्त करने के लिये तपस्यारत पार्वती के संवाद इस इकाई के अंश हैं। कालिदास की उत्कृष्ट काव्यगुणों से युक्त भाषा, गुण, रीति, अलंकार तथा रस से पूर्ण यह रचना आपको संस्कृत काव्य का पूर्ण आस्वाद करायेगी – ऐसी आशा है।

9.2 महाकवि कालिदास : परिचय

कालिदास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि हैं। इनके जन्मकाल तथा स्थान के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित नहीं कहा जा सकता। अनेक किंवदन्तियों और तर्कों के आधार पर विद्वानों ने बंगाल, काशी, विदर्भ, विदिशा, कश्मीर, गढ़वाल आदि अनेक जगहों में इनका जन्मस्थान सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। परन्तु अधिकतर विद्वान् इन्हें उज्जैन का मूल निवासी मानते हैं। इनके समय को लेकर भी अनेक मतभेद है, जिनमें प्रथम शताब्दी एवं चतुर्थ शताब्दी के पक्ष में अधिकतर विद्वान् दिखाई देते हैं। इनमें भी विक्रमादित्य (प्रथम शताब्दी ई. पूर्व) की राजसभा में इनकी उपस्थिति को अधिक लोग मानते हैं।

इनकी रचनाओं के विषय में भी विद्वानों के बीच पर्याप्त मतभेद है फिर भी कुमारसम्भव तथा रघुवंश नामक दो महाकाव्य, ऋतुसंहार तथा मेघदूत नामक दो गीतिकाव्य एवं मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय तथा अभिज्ञानशाकुन्तल नामक तीन नाटक इनकी रचनायें मानी जाती हैं।

9.3 'कुमारसम्भव' महाकाव्य : परिचय

कालिदास की यह रचना आठ सर्गों वाला महाकाव्य है। जैसा कि इसका नामकरण किया गया है– कुमार (कार्तिकेय) + सम्भव (जन्म) अर्थात् यह महाकाव्य शिव-पार्वती के पुत्र कार्तिकेय के जन्म से सम्बन्ध रखता है।

प्रथम सर्ग में उमा (पार्वती) का जन्म, द्वितीय सर्ग में तारकासुर का उपद्रव एवं देवताओं का ब्रह्मा जी के पास जाना तथा इन्द्र द्वारा कामदेव को शिवजी के पास भेजा जाना, तृतीय सर्ग में शिव द्वारा कामदेव का भस्म किया जाना, चतुर्थ सर्ग में कामदेव की पत्नी रति का विलाप, पञ्चम सर्ग में पार्वती की तपस्या एवं शिव द्वारा पार्वती की परीक्षा, छठें सर्ग में पार्वती को शिव के लिए देने का निश्चय, सप्तम सर्ग में शिव-पार्वती-विवाह एवं अष्टम सर्ग में कुमार का जन्म वर्णित है।

कुमारसम्भव का पञ्चम सर्ग बहुत रोचक है। इस सर्ग में मुख्य रूप से दो घटनाओं का वर्णन है– 1. पार्वती-तपस्या तथा 2. शिव-पार्वती का संवाद।

कथा मूलतः इस प्रकार है – तारकासुर के अत्याचारों से दुःखी इन्द्रादि देवता ब्रह्मा जी के पास जाते हैं। ब्रह्मा जी देवताओं को आने वाले समय की प्रतीक्षा हेतु कहते हैं। वे बताते हैं कि हिमालय की पुत्री उमा से शिव का विवाह होने पर उनसे उत्पन्न कुमार से ही तारक का वध हो सकेगा। ब्रह्मा जी के अन्तर्ध्यान हो जाने पर देवता स्वर्ग चले जाते हैं। इधर उमा धीरे-धीरे बड़ी हो रही हैं। शिव जी हिमालय के क्षेत्र में तपस्या में मग्न हैं। इन्द्र कामदेव को दोनों में प्रेम उत्पन्न करने का काम सौंपते हैं। कामदेव रति (पत्नी) के साथ शिव के तपस्या-क्षेत्र में पहुँचता है। पार्वती तपस्यारत शिवजी की पूजा करने सखियों के साथ पहुँचती हैं। इससे पूर्व कामदेव सब ओर बसन्त का सा चमत्कार फैला चुका है। ऐसी स्थिति में कामदेव शिव पर अपना पुष्पबाण चला देता है। जिससे क्रुद्ध शिव तृतीय नेत्र से उसको भस्म कर देते हैं। कामदेव का भस्म होना पार्वती के सामने ही घटित होता है। रति के निरन्तर विलाप से आकाशवाणी होती है कि पार्वती से शिव का विवाह होने के पश्चात् ही शिव कामदेव को अपने अन्दर बिना शरीर के प्रकट करेंगे।

पार्वती के मन में शिव के प्रति प्रेम प्रकट हो चुका है। पार्वती कामदेव के व्यर्थ प्रयत्न को देख चुकी हैं; अतः शिव रूप महान् देव को पति रूप में प्राप्त करने के लिए बड़ी कठोर तपस्या करने का निश्चय करती हैं। अनेक आग्रह के पश्चात् पार्वती के माता-पिता मेना एवं हिमालय पुत्री को तपस्या की अनुमति प्रदान करते हैं। पार्वती राजपरिवार के भोग-विलास का त्याग कर देती हैं। तपस्विनी का वेश धारण कर लेती हैं। पर्वत-शिखर पर तपस्या आरम्भ कर देती हैं। सामान्य तपस्या से जब कार्य सिद्ध नहीं होता दिखता तो वह और कठोर तप करने लगती हैं। ग्रीष्म में चारों ओर आग जलाकर, वर्षा ऋतु में तेज हवा वाली वर्षा के थपेड़ों में तथा शीत ऋतु में गर्दन तक पानी में डूबकर तपस्या करती हैं। अन्त में सर्वथा आहार रहित होकर तपस्या करती हैं। यहाँ तक कि पत्ते आदि तक को भी खाना छोड़ देती हैं। उनका नाम भी इसी कारण से अपर्णा पड़ा है। उसके बाद अकस्मात् एक दिन शिवजी वहाँ एक तेजस्वी ब्रह्मचारी के रूप में प्रकट होते हैं। पार्वती नहीं जानतीं कि यह ब्रह्मचारी कौन है और किसलिए आया है। वह ब्रह्मचारी वेशधारी शिवजी की विधिवत् अतिथि सेवा करती हैं। आतिथ्य स्वीकार कर, क्षणभर विश्राम कर, सरल नेत्रों से पार्वती को देखते हुए पार्वती से संवाद करते हैं, इसी प्रसंग से उद्धृत कुछ श्लोक यहाँ पाठ के रूप में प्रस्तुत किए गए हैं।

9.4 काव्यांश

प्रसंग – महाकवि कालिदास द्वारा रचित कुमारसम्भव नामक महाकाव्य के पञ्चम सर्ग से यह श्लोक उद्धृत है। ब्रह्मचारी वेशधारी भगवान् शिव पार्वती की कठोर तपस्या से प्रभावित होने पर भी पार्वती से अपने सम्बन्ध में और परीक्षा करने के लिए पार्वती की तपस्या-स्थली में पहुँच जाते हैं। पार्वती से अतिथि-सत्कार ग्रहण करने के पश्चात् उसकी तपस्या के प्रयोजन के विषय में पूछते हैं –

श्लोक 1

कुले प्रसूतिः प्रथमस्य वेधसस्त्रिलोकसौन्दर्यमिवोदितं वपुः।

अमृग्यमैश्वर्यसुखं नवं वयस्तपःफलं स्यात् किमतः परं वद।।

कुमा०5/41

अन्वय – प्रथमस्य वेधसः कुले प्रसूतिः, वपुः त्रिलोकसौन्दर्यम् इव उदितम्, ऐश्वर्यसुखम् अमृग्यं, वयः नवम्, अतः परं किं तपःफलं स्यात्? वद।

कठिन शब्द –

वेधसः = प्रजापति ब्रह्मा के, कुले = उच्च वंश में, प्रसूतिः = जन्म, वपुः = शरीर, त्रिलोकसौन्दर्यम्=तीनों लोकों का सौन्दर्य, इव=तुल्य, समान (मानो), उदितम्=प्रकट हुआ है, ऐश्वर्यसुखम्=सत्ता या धन दौलत का सुख, अमृग्यम् = खोजने योग्य नहीं, वयः=आयु, नवम्=नई, अतः परम्=इसके आगे, किम्=क्या, तपःफलम्=तप का फल, स्यात्=हो, वद=बोलो।

प्रथम वेधा = प्रथम ब्रह्मा। ब्रह्म पुराण के अनुसार पर्वतेश्वर हिमालय प्रथम ब्रह्मा की परम्परा में आते हैं। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार समस्त ब्रह्माण्ड के रक्षक और निर्माता ब्रह्मा सभी देवताओं से पूर्व उत्पन्न हुए। पुराणों के अनुसार इसी ब्रह्मा से बाद में अनेक ब्रह्मा उत्पन्न हुए।

अनुवाद – हे पार्वती! प्रथम ब्रह्मा के उच्च कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है। तीनों लोकों के (सम्मिलित) सौन्दर्य के रूप में मानो तुम्हारा शरीर प्रकट हुआ है। ऐश्वर्य का सुख भी मृग्य (खोजने योग्य) नहीं है अर्थात् स्वाभाविक रूप से प्राप्त है। आयु भी तुम्हारी नई है। इन सब के बाद भी कौन सा तपस्या का फल हो सकता है? बोलो।

व्याख्या – ब्रह्मचारी वेशधारी भगवान् शंकर पार्वती से पूछते हैं कि हे पार्वती, हिरण्यगर्भ नामक प्रथम ब्रह्मा के वंश में पर्वतेश्वर हिमालय के घर में अर्थात् अत्यन्त सम्मान योग्य परिवार में तुम्हारा जन्म हुआ है; अतः अच्छे कुल में जन्म-सम्बन्धी आवश्यकता के लिए तप का औचित्य नहीं है। लोग सुन्दर शरीर की प्राप्ति के लिए भी तप करते होंगे, परन्तु तुम्हें तो इतना सुन्दर शरीर (वपु) मिला है, जो मानो तीनों लोकों के सौन्दर्य को इकट्ठा कर तुम्हें प्रकट कर दिया हो। कुछ लोग धन दौलत, राजसत्ता आदि के सुख के लिए भी तप करते हैं पर इस प्रकार का सुख भी तुम्हें बिना ढूंढे मिला है, तुम राजा के घर में जन्मी हो; अतः ऐसा सुख स्वाभाविक रूप से तुम्हें प्राप्त है। इसलिए इस सुख हेतु भी तुम्हारी तपस्या उचित प्रतीत नहीं होती। वृद्ध लोग नई उम्र या अवस्था के लिए तपस्या करते होंगे, उसकी भी तुम्हें आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुम अभी-अभी नवीन आयु को प्राप्त हुई हो। इस प्रकार अच्छे कुल में जन्म, सुन्दरता की प्राप्ति, ऐश्वर्य-सुख, नवीन अवस्था से भी परे तुम्हारी कोई इच्छा हो सकती है जिसके लिए तुम तप कर रही हो, उसे बताओ।

व्याकरण –

वेधसः – वेधस् (पुं०) षष्ठी विभक्ति, एकवचन।

प्रसूतिः – प्र उपसर्ग, सू धातु, स्त्रीलिङ्ग में क्तिन् प्रत्यय।

वपुः – वपुस्, नपुं०, वपुः, वपुषी, वपूंषि।

त्रिलोकसौन्दर्यम् – त्रयाणां लोकानां सौन्दर्यम् तद्धितार्थ० तत्पुरुष समास।

उदितम् – उत् + इ धातु, क्त प्रत्यय, नपुं०।

ऐश्वर्यसुखम् – ऐश्वर्यस्य सुखम् (ष० त०)।

अमृग्यम् – न मृग्यम् (मृग अन्वेषणे चु० ऋदुपधात् क्यप्)।

वयः – वयस् (नपुं०)।

स्यात् – अस् धातु विधिलिङ् प्र०पुरुष, एकवचन।

वद – वद् धातु, लोट्, म०पु०, एकवचन।

विशेष –

1) 'पार्वती का शरीर मानो तीनों लोकों के सौन्दर्य के रूप में प्रकट हुआ है', इस कथन में सौन्दर्य की अधिकता के कारण स्थूल शरीर पर सूक्ष्म सौन्दर्य की ही सम्भावना कर दी गयी है, अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है।

2) इस प्रसंग में पठित सभी श्लोकों में प्रसाद गुण एवं वैदर्भी रीति है जो कि कालिदास के काव्यों की विशेषता है। इन सभी श्लोकों के प्रत्येक चरण में क्रमशः जगण, तगण, जगण, रगण होने से वंशस्थ छन्द है– 'जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ'।

बोध प्रश्न 1

क) पार्वती को तपस्या से पूर्व क्या-क्या वस्तुयें स्वाभाविक रूप से प्राप्त थीं?

.....

.....

ख) 'न ढूंढने योग्य' इसके लिए श्लोक में कौन सा शब्द प्रयुक्त हुआ है?

.....

.....

ग) कालिदास के काव्यों की दो विशेषतायें बताइए।

.....

.....

घ) अस् धातु,, विधिलिङ्, प्र० पु०, एकवचन में क्या रूप बनेगा?

.....

.....

ङ) वपुः और वयः में व्याकरण-सम्बन्धी एक समानता बताइए?

.....

.....

प्रसंग – पूर्ववत्

श्लोक 2

दिवं यदि प्रार्थयसे वृथा श्रमः, पितुः प्रदेशास्तव देवभूमयः।
अथोपयन्तारमलं समाधिना, न रत्नमन्विष्यति मृग्यते हि तत्।

कुमा० 5/45

अन्वय – दिवं प्रार्थयसे यदि, तर्हि श्रमः वृथा, तव पितुः प्रदेशाः देवभूमयः। अथ उपयन्तारं प्रार्थयसे (तर्हि) समाधिना अलम् रत्नं न अन्विष्यति, हि तत् मृग्यते।

कठिन शब्द –

दिवम् = स्वर्ग को, प्रार्थयसे = इच्छा करती हो, तर्हि = तो, प्रदेशाः = शासित क्षेत्र, देवभूमयः = देवों की भूमि या स्वर्ग, अथ = और, उपयन्तारम् = वर (पति) को, समाधिना = तप द्वारा,

अलम् = बस (या व्यर्थ), अन्विष्यति = ढूँढता है, हि = क्योंकि, तत् = वह, मृग्यते = ढूँढा जाता है।

देवभूमि = हिमालय का क्षेत्र अत्यन्त पवित्र माना जाता है। यह स्वर्ग तुल्य है। कालिदास मेघदूत में, भारवि किरातार्जुनीय में हिमालय क्षेत्र में स्वर्ग के देवताओं, अप्सराओं की गतिविधिओं की चर्चा करते हैं।

दिवम् = यद्यपि द्युलोक के लिए यह शब्द प्रचलित है परन्तु कवि ने यहाँ स्वर्ग के लिए इसका प्रयोग किया है।

उपयन्तारम् = उप+यम् धातु का अर्थ विवाह करना होता है। इससे बना यह शब्द यहाँ दुल्हा (वर) के लिए प्रयुक्त है।

अनुवाद – हे पार्वती! यदि तप द्वारा स्वर्ग की इच्छा करती हो तो श्रम व्यर्थ है, क्योंकि तुम्हारे पिता के प्रदेश (राज्यसीमा) देवभूमि (स्वर्ग) तुल्य है और यदि तप से वर की कामना है, तो इसके लिए समाधि (तप) की आवश्यकता नहीं, क्योंकि रत्न स्वयं नहीं ढूँढ़ता है, वह ढूँढा जाता है।

व्याख्या – पार्वती की तपस्या के अन्य प्रयोजनों को स्वयं ही सम्भावना करके उसकी व्यर्थता बताते हुए ब्रह्मचारी रूपधारी शंकर पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती! कुछ लोग स्वर्ग-प्राप्ति के लिए भी तपस्या करते हैं। यदि तुम भी स्वर्ग-प्राप्ति के लिए तप कर रही हो तो तुम्हारा यह परिश्रम आवश्यक नहीं है। क्योंकि तुम्हारे पिता जी जिस भूमि पर शासन करते हैं यह स्वयं देवभूमि (स्वर्ग) है या स्वर्गतुल्य है। इस भूमि पर स्वर्ग के देवता भी आकर रहते हैं या तपस्या आदि करते हैं। समस्त स्वर्ग-सुख तुम्हारे पिताजी के राज्य में प्राप्त है।

अनेक कन्यायें सर्वगुणयुक्त अच्छे वर (पति) की प्राप्ति के लिए भी तपस्या करती हैं। तुम यदि अच्छे वर की प्राप्ति के लिए तप कर रही हो तो यह भी उचित नहीं है। इसके लिए तुम्हें समाधि लगाने की जरूरत नहीं है। रत्न अपने लिए स्वामी की खोज नहीं करता, रत्न को चाहने वाला स्वयं रत्न की खोज करता है। तुम रत्न हो, सर्वगुणसम्पन्न कन्या रत्न हो। तुम्हें वर (स्वामी) खोजने की आवश्यकता नहीं है। विश्व का जो भी श्रेष्ठ वर होगा, तुम्हें अपने आप ढूंढ लेगा। इसके लिए तुम्हें तपस्या की आवश्यकता नहीं है।

व्याकरण –

देवभूमयः – देवानां भूमयः (ष०त० समास)।

उपयन्तारम् – उप+यम्+तृच्=उपयन्ता, उपयन्तारम्, द्वि०वि०, ए०व०।

अन्विष्यति – अनु+इष् परस्मैपद, लृट् लकार, प्र०पुरुष, ए०व०, कर्तृवाच्य की क्रिया।

मृग्यते – मृग+यक् आत्मनेपद, प्र०पु०, ए०व०, कर्मवाच्य की क्रिया। यहाँ तत् (रत्न) कर्म है।

कर्तृवाच्य में कर्ता में प्रथमा, कर्म में द्वितीया, क्रिया कर्ता के अनुसार। कर्मवाच्य में कर्ता में तृतीया, कर्म में प्रथमा, क्रिया कर्म के अनुसार रहती है। "तत् (रत्न) मृग्यते (केनापि)" में कर्मवाच्य है।

अलम् के योग में (मना करने के अर्थ में) यहाँ समाधि में तृतीया हुई है।

विशेष – 'पार्वती को तप की आवश्यकता नहीं है। रत्न ढूँढता नहीं ढूँढा जाता है' इस वाक्य में पूर्वकथन को प्रकारान्तर से समर्थन दिया गया है; अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

क) ब्रह्मचारी द्वारा पार्वती-तपस्या के कौन से दो फलों की सम्भावना यहाँ की गयी है?

.....

.....

ख) इस श्लोक में प्रकारान्तर से 'रत्न' किसे कहा गया है?

.....

.....

ग) वर के लिए श्लोक में क्या शब्द प्रयुक्त किया गया है?

.....

.....

घ) 'अन्विष्यति' किस वाच्य की क्रिया है?

.....

.....

प्रसंग – पार्वती की सखी कहती है कि पता नहीं शंकर कब इस पर दया करेंगे? इसको सुनकर शंकर (ब्रह्मचारी) स्वयं पार्वती से पूछते हैं कि यह सच कह रही है या परिहास कर रही है? पार्वती कहती है कि हे वेदज्ञ ! जैसा आपने सुना है ऐसा ही है, शिव-प्राप्ति हेतु ही तपस्या है। इस सत्य को जानकर ब्रह्मचारी शिव के बीभत्स रूपों की चर्चा करते हैं और उसके उद्देश्य की प्राप्ति में अपनी असहमति व्यक्त करते हैं। वे कहते हैं कि सर्प आदि लपेटे हुए हाथ से जब वे पहली बार तुम्हारा स्पर्श करेंगे, तो उस समय तुम्हें कैसा लगेगा!

श्लोक 3

अवस्तुनिर्बन्धपरे कथं नु ते करोऽयमामुक्तविवाहकौतुकः।
करेण शम्भोर्वलयीकृताहिना सहिष्यते तत् प्रथमावलम्बनम्।।

कुमा० 5/66

अन्वय – हे अवस्तुनिर्बन्धपरे! आमुक्तविवाहकौतुकः अयं ते करः वलयीकृताहिना शम्भोः करेण तत्प्रथमावलम्बनं कथं नु सहिष्यते?

कठिन शब्द –

अवस्तुनिर्बन्धपरे = हे व्यर्थ की वस्तु के लिए आग्रह करने वाली, आमुक्तविवाहकौतुकः = विवाहकालीन मांगलिक वस्तुओं को धारण किया हुआ, अयम् = यह, करः = हाथ, वलयीकृताहिना = सांप लपेटे हुए हाथ के द्वारा, शम्भोः = शंकर के, करेण = हाथ से, तत् = वह, प्रथमावलम्बनम् = प्रथम बार ग्रहण किया जाना, कथं = कैसे, नु = निश्चय से, सहिष्यते = सहन करेगा।

अवस्तुनिर्बन्ध = चिताभस्म आदि अशुभ वस्तुओं के कारण शिव को यहाँ अवस्तु कहा है। यथार्थ में शिव के लिए ये पवित्र वस्तुयें हैं। निर्बन्ध = आग्रह। पार्वती की कठोर तपस्या शिव के प्रति आग्रह (हठ) है।

– विवाहकौतुक = भारतीय परम्परा में विवाह के समय दुल्हन को जो विविध वस्तुयें पहनाई जाती हैं उनके लिए यह शब्द है।

– प्रथमावलम्बन = विवाह के समय सम्पन्न कराया जाने वाला पाणिग्रहण विधि जिसमें वर के हाथ में वधू का हाथ दिया जाता है।

अनुवाद – हे तुच्छ वस्तु के लिए हठ करने वाली पार्वती! विवाह के समय हस्तसूत्र, मंगल सूत्र, कंगन आदि को धारण किया हुआ यह तुम्हारा हाथ, सांप लपेटे हुए शंकर के हाथ से जब प्रथम बार स्पृष्ट होगा, (छुआ जायेगा) तब कैसे सहन कर सकेगा? अर्थात् तुम्हारा हाथ शंकर के हाथ को कैसे सहन कर पायेगा?

व्याख्या अभ्यास 1

इस पद्य की व्याख्या आप अभ्यास के लिये स्वयं कीजिए एवं इस अभ्यास का उत्तर इकाई के अन्त में दी गई सही व्याख्या से मिलाइये।

व्याकरण –

अवस्तुनिर्बन्धपरे	–	न वस्तु अवस्तु, तस्मिन् निर्बन्धः = अवस्तु–निर्बन्धः, तस्मिन् परा (तत्परा), सम्बोधन में ..... परे।
आमुक्तविवाहकौतुकः	–	आमुक्तः (धृतः) विवाहकौतुकः येन सः।
वलयीकृताहिना	–	अवलयः वलयः यथा सम्पद्यते तथा कृतः इति वलयीकृतः। वलयीकृतः अहिः (सर्पः) येन तेन।
प्रथमावलम्बनम्	–	प्रथमं च तत् अवलम्बनम् इति कर्मधारय समास।
नु	–	निश्चयार्थक या प्रश्नार्थक अव्यय।
सहिष्यते	–	सह् + इट् + लृट् लकार, प्र०पु०, एकवचन।

बोध प्रश्न 3

क) पद्य में शिव के लिए कौन सा विशेषणात्मक सम्बोधन पद प्रयुक्त है?

.....

.....

ख) पार्वती एवं शंकर के हाथों की एक समानता बताइए।

.....

.....

ग) 'अवलम्बन' में क्या प्रत्यय है?

.....

.....

.....

घ) 'सह् धातु' आत्मनेपदी है या परस्मैपदी?

.....

.....

.....

प्रसंग – ब्रह्मचारी वेशधारी शंकर पार्वती की परीक्षा हेतु पुनः अमङ्गलवेशधारी शंकर और मांगलिक वेशधारी वधू (पार्वती) की तुलना करते हुए कहते हैं कि दोनों में कोई समन्वय या संगति नहीं है, अतः शिव-प्राप्ति की इच्छा छोड़ ही देनी चाहिए –

श्लोक 4

त्वमेव तावत्परिचिन्तय स्वयं, कदाचिदेते यदि योगमर्हतः।
वधूदुकूलं कलहंसलक्षणं, गजाजिनं शोणितविन्दुवर्षि च।।

कुमा० 5/67

अन्वय – त्वमेव स्वयं तावत् परिचिन्तय, कलहंसलक्षणं वधूदुकूलं (तथा) शोणितविन्दुवर्षि गजाजिनं च, एते कदाचिद् योगम् अर्हतः यदि?

कठिन शब्द एवं सन्दर्भ –

त्वम् = तुम, एव = ही, तावत् = तब तक (थोड़ा), परिचिन्तय = सोचो, कलहंसलक्षणम् = मधुर ध्वनि करने वाले विशेष प्रकार के हंसों के समान चिह्न वाला। (अर्थात् अत्यन्त सुन्दर), वधूदुकूलम् = नव वधू का रेशमी वस्त्र, शोणितविन्दुवर्षि = खून के बूंद को वर्षाने वाला, गजाजिनम् = हाथी का अजिन अर्थात् चर्म, एते = ये दोनों विपरीत प्रकार के वस्त्र, कदाचित् = कभी, योगम् = संगति को, अर्हतः = योग्य हैं, यदि = यदि (तो या क्या)।

– वधूदुकूलम् = विवाह के समय नव वधू को धारण करायी जाने वाली रेशमी साड़ी एवं दुपट्टा के लिए यह शब्द प्रयुक्त हुआ है। ग्रन्थि-बन्धन-विधि में इसके आंचल का उपयोग किया जाता है।

– शोणितविन्दुवर्षि गजाजिनम् –भगवान् शंकर ने गजासुर को मारकर उसके चमड़े को अपने शरीर में लपेट कर नृत्य किया था। कालिदास ने ऐसी चर्चा मेघदूत (38 पूर्वमेघ) में भी की है। मालतीमाधव (5/23 अंक) में भी भवभूति ने इसका उल्लेख किया है। यहाँ अभिप्राय यह है कि विवाह के समय ही यह समस्या होगी, तो ऐसे शंकर की गोद में बैठना तो और भी बीभत्स होगा।

अनुवाद – हे गौरी! तुम ही स्वयं थोड़ा विचार करो कि कलहंस के समान सुन्दर नववधू का रेशमी वस्त्र तथा खून की बूंदें टपका रहा गजचर्म, ये दोनों क्या कभी साथ-साथ रह सकती हैं, इनका योग बैठ सकता है? अर्थात् नहीं।

व्याख्या – ब्रह्मचारी पार्वती से कहते हैं कि हे पार्वती! तुम ही थोड़ा अपनी बुद्धि से विचार कर के देखो कि शिव-पार्वती का जोड़ा कितना बेढंगा है। विवाह के समय वर एवं वधू के वस्त्रों का ग्रन्थि-बन्धन किये जाते समय एक तरफ तुम्हारा कलहंसों के समान अत्यन्त सुन्दर रेशमी वस्त्र (साड़ी आदि) होगा तो जिससे एक तरफ रक्त टपक रहा हो, ऐसा शंकर का गजचर्म होगा। तुम स्वयं सोचो कि इन दो प्रकार के वस्त्रों की कोई संगति होगी? कितना भद्दा लगेगा; लोग भी हंसेंगे। इसलिए हे गौरी! शंकर को वर रूप में पाने की इच्छा छोड़ दो।

व्याकरण –

परिचिन्तय – परि + चिन्त + णिच् लोट्, म०पु०, ए० वचन।

कलहंसलक्षणम् – कलहंसस्य लक्षणम् इव लक्षणं यस्य तत् (ब०व्री० समास)।

शोणितविन्दुवर्षि – शोणितविन्दून् वर्षति इति (उपपद तत्पुरुष)।

गजाजिनम् – गजस्य अजिनम् (ष०त०पु०)।

अर्हतः – अर्ह् + लट् प्र०पु०, द्विवचन।

विशेष –

ग्रन्थि-बन्धन के समय उपस्थित होने वाली दो विषम वस्तुओं के वर्णन से यहाँ विषम नाम का अलंकार है।

बोध प्रश्न 4

क) पद्य में दो विषम वस्तुओं का वर्णन कर कब इसके हास्यास्पद होने की स्थिति वर्णित है?

.....

.....

ख) गजाजिन क्या है?

.....

.....

ग) किससे स्वयं चिन्तन-हेतु कहा गया है?

.....

.....

घ) योग पद का यहाँ क्या अर्थ है?

.....

.....

ङ) अर्हतः किस वाच्य की क्रिया है? कर्तृवाच्य / कर्मवाच्य

.....

.....

प्रसंग – शिव से विवाह के लिए दृढ निश्चय वाली पार्वती से ब्रह्मचारी कहते हैं कि इस समय दो वस्तुयें शोचनीय दशा को प्राप्त हो गई हैं। संसार को आनन्द देने वाला चन्द्रमा शिव जटाओं में फंसकर निस्तेज हो गया है तो दूसरी ओर जिसे देखकर संसार को जो थोड़ा बहुत सुख मिलता था वह तुम भी उसी शिव के चक्कर में पड़ने जा रही हो। हे पार्वती! थोड़ा तो सोचो कि उस शिव में एक वर में होने योग्य कोई भी गुण है क्या?

श्लोक 5

वपुर्विरूपाक्षमलक्ष्यजन्मता, दिगम्बरत्वेन निवेदितं वसु।
वरेषु यद् बालमृगाक्षि! मृग्यते, तदस्ति किं व्यस्तमपि त्रिलोचने।।

कुमा० 5/72

अन्वय – वपुः विरूपाक्षम्, अलक्ष्यजन्मता, वसु दिगम्बरत्वेन निवेदितम्। हे बालमृगाक्षि! वरेषु यत् मृग्यते तत् त्रिलोचने व्यस्तमपि अस्ति किम्?

कठिन शब्द –

वपुः = शरीर, विरूपाक्षम् = विकृत आँखों वाला, अलक्ष्यजन्मता = जन्म के विषय में कुछ पता न होना, वसु = धन, दिगम्बरत्वेन = दिशा रूप वस्त्र वाला होने से, निवेदितम् =

सूचित कर दिया है, बालमृगाक्षि = हे बाल मृग के आँखों के समान आँखों वाली!, मृग्यते = ढूँढा जाता है, तत् = वह, त्रिलोचने = तीन लोचन (नेत्र) वाले शिव में, व्यस्तम् = एक (समस्त का विपरीत), अपि = भी, अस्ति किम् = है क्या?

- विरूपाक्षम् = विरूप आँख वाला। कामदेव को भस्म करने के लिए एक ज्योति प्रकट हुई जो तीसरी आँख के रूप में तिरछी प्रकट हुई थी।
- अलक्ष्यजन्मता = जन्म का लक्षित न हो पाना। शिव अनादि पुरुष हैं, अतः जन्म का पता न चलना स्वाभाविक है।
- दिगम्बरत्व = वैराग्य की चरम सीमा, जहाँ सब कुछ एक रूप हो जाता है। महायोगी शिव का ऐसा होना विचित्र नहीं है।

अनुवाद – हे गौरी! उस शंकर का शरीर विकृत (विषम) आँखों वाला है, उसकी जन्म-सम्बन्धी कोई जानकारी नहीं है, वह कितना धनवान् है यह उसके दिगम्बर होने से ही पता चल जाता है। हे बालमृग के आँखों के समान आँखों वाली पार्वती! वरों के विषय में जो (गुण) देखे जाते हैं, उनमें से एक भी क्या शंकर में है? अर्थात् नहीं है।

व्याख्या – हे पार्वती! कन्या वाले जब वर को देखने जाते हैं तो वे ध्यान से वर के शरीर को, उसके कुल खानदान को और खास करके उसके धन, दौलत को देखते हैं; जिससे कि उनकी बेटी शादी के बाद सुख से रह सके। शंकर का शरीर विषम एवं विकृत नेत्रों से युक्त है अर्थात् असुन्दर है। जहाँ तक जन्म एवं कुल की बात है तो उसका कुछ भी अता-पता नहीं है। धन, दौलत की तो बात ही बेकार है। पहनने के लिए कपड़ा तक उसके पास नहीं है। नंगा ही घूमता फिरता है। हे बालमृगनयनी! वर-चयन के लिए जो गुण ढूंढे जाते या देखे जाते हैं वह उस त्रिलोचन शंकर में कुछ भी नहीं है। एक गुण भी नहीं है। अतः शिव को पतिरूप में पाने की इच्छा छोड़ो। शिव प्रकारान्तर से पुनः पार्वती की परीक्षा ले रहे हैं।

व्याकरण –

विरूपाक्षम्	–	विकृतरूपाणि अक्षीणि यस्य तत् (वपुः का विशेषण) बहु०।
अलक्ष्यजन्मता	–	न लक्ष्यम् अलक्ष्यम्, अलक्ष्यं च तत् जन्म इति अलक्ष्यजन्म, तस्य भावः के अर्थ में तल् प्रत्यय।
दिगम्बरत्वेन	–	दिशः एव अम्बरं यस्य सः, तस्य भावः अर्थ में त्व प्रत्यय। उसके द्वारा
निवेदितम्	–	नि + विद् + णिच् + क्त (कर्मवाच्य में क्त प्रत्यय)।
बालमृगाक्षि	–	बालश्चासौ मृगः बालमृगः, तस्य अक्षिणी इव अक्षिणी यस्याः सा बालमृगाक्षी। सम्बोधन में बाल ..... क्षि। कर्मधारय एवं बहुव्रीहि।
मृग्यते	–	मृग् + यक् + ते (कर्म वा०)।
व्यस्तम्	–	वि + असु + क्त।

बोध प्रश्न 5

क) वर में कम से कम कौन से तीन गुण होने चाहिए?

.....

.....

.....

.....

ख) 'बालमृगाक्षी' पद द्वारा पार्वती के आँखों की कौन सी दो विशेषतायें सूचित की गई हैं?

.....

.....

ग) भाव अर्थ में प्रयुक्त दो प्रत्ययों का उल्लेख करें।

.....

.....

घ) बहुव्रीहि समास के दो पद ढूंढ़कर नीचे लिखें।

.....

.....

प्रसंग – निम्न श्लोक पार्वती द्वारा कथित है। ब्रह्मचारी द्वारा निरन्तर शिव के विषय में विपरीत बातें कहते जाने से पार्वती गुस्से में आ गईं, निचला ओठ फड़कने लगा, भौहें टेढ़ी हो गईं, आँखें लाल-लाल सी हो गईं। वह बहुत रूखे शब्दों में ब्रह्मचारी के कथनों का प्रतिवाद करती हुई कहती हैं –

श्लोक 6

उवाच चैनं परमार्थतो हरं, न वेत्सि नूनं यत एवमात्थ माम्।
अलोकसामान्यमचिन्त्यहेतुकं, द्विषन्ति मन्दाश्चरितं महात्मनाम्।।

कुमा० 5/75

अन्वय – अथ एनम् उवाच च, त्वं परमार्थतः हरं नूनं न वेत्सि, यतः माम् एवम् आत्थ, मन्दाः अलोकसामान्यम् अचिन्त्यहेतुकं महात्मनां चरितं द्विषन्ति।

कठिन शब्द एवं सन्दर्भ –

अथ = इसके बाद, एनम् = इसको, उवाच = बोली, परमार्थतः = यथार्थ रूप से, हरं = शिव को, नूनं = निश्चित रूप से, वेत्सि = जानते हो, यतः = जिससे, माम् = मुझ को, एवम् = इस प्रकार, आत्थ = बोलते हो, मन्दाः =मूर्ख, अलोकसामान्यम् = जो संसार में सामान्य रूप से न हो, अचिन्त्यहेतुकम् = जिसका कारण सामान्य लोगों द्वारा सोचा न जा सके, महात्मनाम् = श्रेष्ठ लोगों का, चरितम् = जीवनी (जीवन के क्रियाकलाप), द्विषन्ति = द्वेष या निन्दा करते हैं।

– अचिन्त्यहेतुकम् = शंकर के विषय में पूर्व श्लोकों में ब्रह्मचारी द्वारा जो कहा गया है, वह ऊपर से देखने पर यथार्थ प्रतीत होता है, परन्तु इसके पीछे जो रहस्य है उसे सब नहीं जान पाते। इस प्रकार के उनके आचरण के कारण कोई भी नहीं समझ पाते।

अनुवाद – और इसके बाद पार्वती इस ब्रह्मचारी से बोली कि हे ब्रह्मचारी, तुम वास्तविक रूप से शंकर को निश्चित रूप से नहीं जानते हो जिससे तुम मुझे इस प्रकार कह रहे हो। मूर्ख लोग महात्माओं के अलौकिक, मन, वचन के कर्म से परे स्थित चरित्र से द्वेष करते ही हैं अर्थात् मूर्ख महान् लोगों के चरित्र से द्वेष करते हैं और उसकी निन्दा करते हैं।

व्याख्या अभ्यास 2

इसकी व्याख्या आप स्वयं कीजिए एवं अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिए गए उत्तर से मिलाइए।

व्याकरण –

एनम् – एतत् सर्वनाम, पुं०, द्वि०वि०, एकवचन; पक्ष में 'एतम्' भी बनता है।

उवाच – वच् + लिट् लकार, द्वित्वकार्य, प्र०पु०, ए०व० (दूरगत भूतकाल के लिए प्रयोग होता है)।

परमार्थतः – पञ्चमी के अर्थ में तसिल् प्रत्यय, अव्यय पद।

वेत्सि – विद् ज्ञाने, विद् + लट् म०पु०, ए०व0।

यतः – यत् + तसिल् = यतः ; अव्यय पद।

आत्थ – ब्रू + लट् म०पु०, एकवचन (ब्रू के स्थान में लट् में 'आह' आदेश)।

अलोकसामान्यम् – लोके सामान्यम् = लोकसामान्यम्, न लोकसामान्यम् अलोकसामान्यम् (स०त०पु० तथा नञ् त०)।

अचिन्त्यहेतुकम् – न चिन्त्यः = अचिन्त्यः, अचिन्त्यः हेतुः यस्य तत् अचिन्त्य, हेतुकम् (बहु० समासान्त कप् प्रत्यय)।

महात्मनाम् – महान् आत्मा येषां, ते महात्मानः, तेषाम् महात्मनाम्।

द्विषन्ति – द्विष् + लट् प्र० पु०, बहुवचन।

विशेष –

श्लोक के पूर्वार्द्ध में कथित विषय को उत्तरार्द्ध के द्वारा समर्थित किया गया है, अतः यहाँ अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

बोध प्रश्न 4

क) श्लोक में 'महात्मा' किसके लिए प्रयुक्त है?

.....

.....

ख) चरितम् के लिए प्रयुक्त दो विशेषण बताइए।

.....

.....

ग) 'आत्थ' किस लकार की क्रिया है?

.....

.....

घ) 'एनम्' का मूल शब्द क्या है?

.....

.....

प्रसंग – ब्रह्मचारी ने शंकर को निर्धन, श्मशानवासी तथा विकृत रूप वाला बताकर पार्वती को, उससे दूर होने के लिए कहा था। पार्वती इन आरोपों का खण्डन करती हुई इनको युक्ति-संगत विशेषता के रूप में चित्रित कर रही हैं –

श्लोक 7

अकिञ्चनः सन् प्रभवः स सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।।

कुमा० 5/77

अन्वय – सः अकिञ्चनः सन् सम्पदां प्रभवः, पितृसद्मगोचरः (सन्) त्रिलोकनाथः, सः भीमरूपः (सन्) शिव इति उदीर्यते। पिनाकिनः याथार्थ्यविदः न सन्ति।

कठिन शब्द –

अकिञ्चनः = जिसके पास कुछ भी न हो, सन् = होते हुए, सम्पदाम् = सम्पत्तियों, धन दौलतों का, प्रभवः = उत्पत्ति-स्थान, पितृसद्मगोचरः = श्मशान में दिखने वाला, त्रिलोकनाथः = स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीनों का स्वामी, भीमरूपः = भयंकर रूप वाला, शिवः = कल्याणमय, इति = ऐसा, उदीर्यते = कहा जाता है, पिनाकिनः = शंकर के, याथार्थ्यविदः = यथार्थ रूप को जानने वाले, न सन्ति = नहीं हैं।

– पितृसद्मगोचरः = पितृ = पितर लोग, सद्म = घर, गोचर = दिखाई देने वाला अर्थात् श्मशान में रहने वाला। पुराण, तन्त्र, आगम आदि में शिव को श्मशान में रहने वाला बताया गया है।

– पिनाकिनः = पिनाक नामक धनुष धारण करने से शिव का एक नाम पिनाकी है।

अनुवाद – वे अकिञ्चन (तुच्छ) होते हुए भी सम्पत्तियों के उत्पत्ति-स्थान हैं, श्मशान-निवासी होते हुए भी तीनों लोकों के स्वामी हैं और भयंकर स्वरूप वाले होते हुए भी शिव (कल्याणकारी) कहलाते हैं। शंकर के यथार्थ स्वरूप को जानने वाले लोग संसार में हैं ही नहीं।

व्याख्या – पार्वती ब्रह्मचारी के आरोपों का खण्डन करती हुई कहती हैं कि भगवान् शंकर को मूर्ख लोग दिगम्बर देखकर भले ही दरिद्र या तुच्छ कहें पर यथार्थ में तो वे संसार की सभी सम्पत्तियों के जनक हैं। बेशक वे श्मशान में घूमते हुए या समाधि लगाए हुए भी दिख जाते हैं पर इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है कि वे ही तीनों लोकों के नाथ हैं। जटाजूटधारी होने से, गजचर्म धारण करने से या विकृत तृतीय नेत्र धारण करने से देखने में थोड़े भयंकर भले ही दिखते हों, पर सच्चाई यही है कि वे शिव कहलाते हैं, वे कल्याणमय हैं, मंगलमय हैं। पार्वती दृढ़ता के साथ कहती हैं कि संसार में भगवान् शंकर के यथार्थ रूप को जानने वाले लोग तो हैं ही नहीं। वह ब्रह्मचारी से कहती हैं कि तुम भी उन्हीं अज्ञानियों में से हो जो नहीं जानते कि शंकर का वास्तविक स्वरूप क्या है। शिव के प्रति पार्वती के मन में प्रेम की प्रगाढता झलक रही है। वह उनके प्रति दृढ आस्था वाली हैं।

व्याकरण –

अकिञ्चनः	–	नास्ति किञ्चन यस्य सः (मयूरव्यंसकादि० समास)।
सन्	–	अस् + लट् (लट् को शतृ आदेश) पुं० प्र० वि०, ए० व०।
प्रभव	–	प्रभवति अस्मात् इति (ऋदोरप्) अप् प्रत्ययः।
पितृसद्मगोचरः	–	पितॄणां सद्मनि गोचरो यस्य सः (ष०त०, बहु०)।
त्रिलोकनाथः	–	त्रयाणां लोकानां नाथः (तद्धितार्थोत्त० त० स०)।
भीमरूपः	–	भीमं रूपं यस्य सः (बहु०)।
उदीर्यते	–	उत् + ईर् (गतौ कम्पने च) + यक् (कर्म वा०)।

याथार्थ्यविदः – यथार्थस्य भावः याथार्थ्यम्, तत् विदन्ति इति याथार्थ्यविदः। भाव में ष्यञ् प्रत्यय।

श्लोक में एक ही शंकर के लिए दो विरोधी कथनों का आभास होने से यहाँ विरोधाभास अलंकार है।

बोध प्रश्न 7

क) शिव को अकिञ्चन या अवस्तु किसने कहा था?

.....

.....

ख) श्लोक में श्मशान के लिए क्या पद प्रयुक्त है?

.....

.....

ग) 'अकिञ्चनः' में क्या समास है?

.....

.....

घ) इस श्लोक में 'प्रभव' में एकवचन है या बहुवचन?

.....

.....

ङ) 'भीमरूपः' का विग्रह लिखिए?

.....

.....

प्रसंग – निम्न श्लोक में भी ब्रह्मचारी द्वारा शिव के ऊपर लगाए गए आरोपों का पार्वती युक्ति-संगत समाधान प्रस्तुत करती हुई कहती हैं कि शरीर से शंकर के यथार्थ स्वरूप का निश्चय नहीं हो पाता –

श्लोक 8

विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा, गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा।
कपालि वा स्यादथवेन्दुशेखरं, न विश्वमूर्तेरवधार्यते वपुः।।

कुमा० 5/78

अन्वय – विश्वमूर्तेः वपुः विभूषणोद्भासि पिनद्धभोगि वा, गजाजिनालम्बि दुकूलधारि वा, कपालि वा, अथवा इन्दुशेखरं स्यात् इति न अवधार्यते।

कठिन शब्द –

विश्वमूर्तेः = तीनों लोक स्वरूप है जिसका, वपुः = शरीर, विभूषणोद्भासि = आभूषणों से चमकने वाला, पिनद्धभोगि = सांप को लपेटा हुआ, गजाजिनालम्बि = गज चर्म धारण किया हुआ, दुकूलधारि = रेशमी वस्त्र धारण किया हुआ, कपालि = कपालधारी, इन्दुशेखरम् = चन्द्रमा को सिर पर धारण किया हुआ, स्यात् = हो, अवधार्यते = निश्चय हो पाता है। विश्वमूर्तेः = कालिदास शिव के प्रति भक्तिमान दिखते हैं। अपने साहित्य में अनेक जगहों

पर उनको जल, अग्नि आदि आठ प्रत्यक्ष शरीरों में प्रकट होने वाला बताया है। समस्त ब्रह्माण्ड ही उनका शरीर है।

अनुवाद – व्यापक स्वरूप वाले भगवान् शंकर का शरीर आभूषणों से चमकने वाला हो या सांपों से बंधा हुआ हो, हस्ती-चर्म धारण किया हुआ हो या रेशमी वस्त्रों से अलंकृत हो, नरमुण्डों की माला पहनी हो या सिर पर चन्द्रमा को बैठा रखा हो, (चाहे किसी रूप में भी उनका शरीर दिखाई दे,) इससे उनके यथार्थ स्वरूप का निर्धारण (निश्चय) नहीं हो पाता।

व्याख्या – पिछले कुछ श्लोकों में ब्रह्मचारी ने शिव को सांप लपेटा हुआ, गजचर्म धारण किया हुआ इत्यादि बीभत्स रूपों का वर्णन किया था। इस सन्दर्भ में पार्वती कहती हैं कि शंकर बाह्य शरीर में कुछ भी धारण करें, इससे उनकी महत्ता में कोई हानि नहीं होती। वे आठ मूर्तियों (जल-अग्नि-यजमान-सूर्य-चन्द्र-आकाश-पृथ्वी-पवन रूप) वाले हैं। यह समस्त विश्व ही उनका अपना रूप है। वे किस रूप में दिखाई देते हैं यह महत्त्वपूर्ण नहीं है। वे आभूषण पहनें, चाहे सांप लपेटें, हाँथी का चर्म धारण करें या रेशमी वस्त्र पहनें, मृत मनुष्यों के कपालों की माला को गले में डालें या सिर पर चाँद को रख लें, ये महान् पुरुषों की लीला है, उनकी माया है। इससे वे सचमुच में क्या हैं इसकी जानकारी नहीं हो सकती। उनको जानने के लिए अन्तःकरण का प्रकाश ही अपेक्षित रहेगा।

व्याकरण –

विश्वमूर्तेः	–	विश्वम् एव मूर्तिः यस्य, तस्य (बहु०)।
विभूषणोद्भासि	–	विभूषणैः उद्भासते (ताच्छील्य अर्थ में णिनि)।
पिनद्धभोगि	–	पिनद्धः भोगी (सर्पः) येन तत् (बहु०)।
गजाजिनालम्बि	–	गजस्य अजिनं लम्बते (ताच्छील्य अर्थ में णिनि)।
दुकूलधारि	–	दुकूलं धारयति (ताच्छील्य अर्थ में णिनि)।
कपालि	–	कपालम् अस्य अस्ति (मत्वर्थीय इनि)।
इन्दुशेखरम्	–	इन्दुः शेखरं (शिरः शिखा वा) यस्य तत् (बहु०)।
स्यात्	–	अस् + विधिलिङ् प्र०पु०, ए०व०।
अवधार्यते	–	अव + धारि + यक् लट् प्र०पु०, ए०व० (कर्म वा०)।

बोध प्रश्न 8

क) किस शब्द में शंकर के शरीर को सांपों वाला बताया गया है?

.....

.....

ख) विश्वमूर्ति शब्द से शिव के किस रूप को दर्शाया गया है?

.....

.....

ग) 'वपुः' के तीन विशेषण पदों को लिखिए?

.....

.....

घ) 'गजाजिनम्' पद में क्या समास है?

.....

.....

ङ) धातु में यक् प्रत्यय लगने पर किस वाच्य की क्रिया बनती है? (कर्मवाच्य/कर्तृवाच्य)

.....

.....

प्रसंग – तपस्विनी पार्वती ब्रह्मचारी द्वारा प्रस्तुत किए गए सभी आरोपों का युक्तिसंगत उत्तर देने के पश्चात् निम्न श्लोक में भावनात्मक उत्तर देती हैं कि हे ब्रह्मचारी! तुम शंकर को जैसा चाहो, मानते रहो, मेरा मन तो उन्हीं में लग गया है और मैं किसी की परवाह नहीं करती –

श्लोक 9

अलं विवादेन यथाश्रुतस्त्वया तथाविधस्तावदशेषमस्तु सः।
ममात्र भावैकरसं मनःस्थितं, न कामवृत्तिर्वचनीयमीक्षते।।

कुमा० 5/82

अन्वय – विवादेन अलम्, स त्वया यथाश्रुतः, अशेषं तथाविधः अस्तु। मम मनः अत्र भावैकरसं स्थितम्। कामवृत्तिः वचनीयं न ईक्षते।

कठिन शब्द –

विवादेन = बहस से, अलम् = बस, यथा = जैसा, श्रुतः = सुना है, तथाविधः = वैसा ही, अशेषम् = पूर्णरूप से, अस्तु = हो, भावैकरसम् = अद्वितीय शृङ्गार रस में लीन (मल्लिनाथ), कामवृत्तिः = कामवासना में लीन या स्वेच्छाचारी, वचनीयम् = लोकनिन्दा को, ईक्षते = देखता है, परवाह करता है।

अनुवाद – ब्रह्मचारी से पार्वती कहती हैं कि हे ब्रह्मचारी विवाद करने से बस करो, तुमने उनके विषय में जैसा सुना है पूर्ण रूप से वैसा ही रहने दो। मेरा मन इस विषय में शिवप्राप्ति-रूप भाव में ही एक रस (तल्लीन) है। कामवासना में लीन मन-वाला व्यक्ति या स्वेच्छाचारी व्यक्ति लोकनिन्दा की परवाह नहीं करता।

व्याख्या अभ्यास 3

इस पद्य की व्याख्या आप स्वयं कीजिए।

व्याकरण –

अलं विवादेन – मना करने अर्थ में 'अलं' का प्रयोग हो तो तृतीया होती है; इसलिए विवाद में तृतीया है।

श्रुतः – श्रु + क्त (कर्मवाच्य में क्त प्रत्यय)।

अशेषम् – न शेषः (क्रियाविशेषण होने से नपुंसकलिंग है)।

भावैकरसम् – भावः (शृङ्गारः) एकः रसः यस्य तत् (बहु०)।

कामवृत्तिः – कामे वृत्तिः यस्य सः (बहु०)।

वचनीयम् – वच् + अनीयर्।

ईक्षते – ईक्ष् + लट् (आत्मने० प्र०पु०, ए०व०)।

विशेष –

श्लोक का तीसरा चरण (श्लोक का चतुर्थांश चरण कहलाता है) में कथित बात का चौथे चरण में कथित कारण के द्वारा समर्थन किया गया है, अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

बोध प्रश्न 9

क) किस पद से शिव के प्रति पार्वती का मन दृढ़ प्रतीत होता है?

.....

.....

ख) मनमानी करने वाले के लिए पद्य में कौन सा पद प्रयुक्त है?

.....

.....

ग) 'त्वया' पद किस व्यक्ति के लिए आया है?

.....

.....

घ) 'मनः' पद पुंल्लिग है या नपुंसक?

.....

.....

ङ) 'विवादेन' में तृतीया का प्रयोग क्यों किया गया है?

.....

.....

प्रसंग– पार्वती द्वारा अपना दृढ़ निश्चय बताकर विवाद में न पड़ने की बात कहने से ब्रह्मचारी के वेश में स्थित भगवान् शंकर बात को आगे बढ़ाने के लिए कुछ कहना चाहते हैं, तो पार्वती नाराज़ सी हो जाती हैं और अपनी सखी से ब्रह्मचारी को दूर हटाने के लिए कहती हैं –

श्लोक 10

निवार्यतामालि किमप्ययं बटुः, पुनर्विवक्षुः स्फुरितोत्तराधरः।
न केवलं यो महतोऽपभाषते, शृणोति तस्मादपि यः स पापभाक्।।

कुमा० 5/83

अन्वय – हे आलि! स्फुरितोत्तराधरः पुनः किमपि विवक्षुः अयं बटुः निवार्यताम्। यः महतः अपभाषते केवलं स एव न पापभाक् अपितु तस्मात् यः शृणोति (सः अपि पापभाक् भवति)

कठिन शब्द –

आलि = हे सखी!, स्फुरितोत्तराधरः = अत्यधिक फड़कता हुआ अधर (होठों) वाला, पुनः किमपि = फिर से कुछ, विवक्षुः = बोलने के इच्छुक, अयं = यह, बटुः = ब्रह्मचारी, निवार्यताम् = हटाओ, महतः = महापुरुषों को (की), अपभाषते = निन्दा करता है, पापभाक् = पाप का भागी, अपितु = बल्कि, सः अपि = वह भी, तस्मात् = उससे।

अनुवाद – हे सखी! यह ब्रह्मचारी फड़कता हुआ अधर वाला और फिर से कुछ कहने की इच्छा वाला दिख रहा है, इसे यहाँ से हटा दो। जो महान् लोगों की निन्दा करता है। केवल वह ही पाप का भागी नहीं होता, बल्कि उससे जो सुनता है वह भी पाप का भागी बनता है।

व्याख्या – पार्वती पहले ही कह चुकी हैं कि वह विवाद में नहीं पड़ना चाहतीं; इसलिए जब वह ब्रह्मचारी को देखती हैं कि उसके नीचे का होंठ बहुत फड़क रहा है और फिर से कुछ कहना चाहता है तो पार्वती थोड़े गुस्से में आकर सखी से कह रही हैं कि इस ब्रह्मचारी को यहाँ से हटाओ। हटाने की बात से ही पता चलता है कि ब्रह्मचारी के ऊपर पार्वती को थोड़ा क्रोध आ गया है। वह कहती हैं कि शिव महान् हैं और जो महान् पुरुषों की निन्दा करता है, वही पाप का भागी नहीं बनता, बल्कि जो उस महापुरुषनिन्दक से निन्दा को सुनता है वह भी पाप का भागी बनता है।

व्याकरण –

स्फुरितोत्तराधरः	–	स्फुरितेन उत्तरः = स्फुरितोत्तरः (तृ०तत्०), स्फुरितोत्तरः अधरः यस्य सः (बहु०)।
विवक्षुः	–	वच् + सन् = विवक्षा, द्वित्वकार्य के पश्चात् उ प्रत्यय = विवक्षुः।
निवार्यताम्	–	नि + वृ + णिच् = निवारि, निवारि + यक् + लोट् (कर्मवाच्य की क्रिया, प्र०पु०, ए०व०)।
महतः	–	महत् शब्द, द्वि०वि०, बहुवचन।
अपभाषते	–	अप+भाष्+लट् प्र०पु०, ए०व० (आत्मनेपदी)।
पापभाक्	–	पापं भजति इति (उपपद स०) णिच् प्रत्यय।
शृणोति	–	श्रु+श्नु+लट् (तिप्) (श्रु को शृ आदेश) प्र०पु०, ए०व०।

विशेष –

'महापुरुषों की निन्दा सुनने से पाप होता है' – इस कथन के द्वारा महापुरुषनिन्दक ब्रह्मचारी को हटाने का समर्थन किया गया है; अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

बोध प्रश्न 10

क) ब्रह्मचारी को हटाने का कारण क्या है – (विवाद में न पड़ने की इच्छा / निन्दा-श्रवण से बचना)।

.....

.....

ख) इनमें से कर्मवाच्य की क्रिया कौन सी है – (निवार्यताम् / शृणोति)

.....

.....

प्रसंग– तपस्विनी पार्वती फिर से कुछ बोलने के इच्छुक ब्रह्मचारी को हटाने के लिए अपनी सखी को निर्देश देती हैं। फिर सोचती हैं कि यदि ब्रह्मचारी नहीं जाता तो मैं ही वहाँ से चली जाती हूँ। सोचकर जाने के लिए उठकर चल पड़ती हैं। तभी ब्रह्मचारी का वेशधारण किए भगवान् शंकर अपने असली स्वरूप में आ जाते हैं और गौरी का हाथ पकड़ लेते हैं:

श्लोक 11

इतो गमिष्याम्यथवेति वादिनी चचाल बाला स्तनभिन्नवल्कला।
स्वरूपमास्थाय च तां कृतस्मितः समाललम्बे वृषराजकेतनः।।

कुमा० 5/84

अन्वय– अथवा इतः गमिष्यामि इति वादिनी स्तनभिन्नवल्कला बाला चचाल। वृषराजकेतनः च स्वरूपम् आस्थाय कृतस्मितः सन् ताम् स आललम्बे।।

कठिन शब्द –

इतः = यहाँ से, इति = इस प्रकार, वादिनी = बोलती हुई, चचाल = चल पड़ी, बाला = लड़की, स्तनभिन्नवल्कला = स्तनों से खिसक गया है वल्कल जिसका, स्वरूपम् = अपने रूप को, आस्थाय = धारण करके, तां = उसको, कृतस्मितः = मुस्कराते हुए, समाललम्बे = पकड़ लिया, वृषराजकेतनः = श्रेष्ठ बैल है झण्डे में जिसके या बैल रूपी चिह्न वाला। कालिदास ने शिव के लिए वृषभध्वज पद का भी अनेक जगह प्रयोग किया।

अनुवाद – 'अथवा मैं ही यहाँ से चली जाऊंगी' ऐसा बोलती हुई, स्तनों से थोड़ा खिसके हुए वल्कल (पेड़ों की छाल) वस्त्र वाली वह कन्या (गौरी) वहाँ से चल पड़ी और तभी वृषभध्वज (जिसकी ध्वजा पर बैल का चिह्न है) ने अपने रूप में आकर, मुस्कराते हुए उसे पकड़ लिया।

व्याख्या – पार्वती सोचती हैं कि ब्रह्मचारी यदि यहाँ से नहीं गया तो फिर से जरूर कुछ बोलेगा और शिव के विपरीत ही बोलेगा, इसलिए मैं ही यहाँ से चली जाती हूँ कहती हुई वहाँ से चल पड़ती हैं। पार्वती के मन में यह बात भी हो सकती है कि यह व्यक्ति शिव के विषय में कुछ भी बोले, है तो ब्राह्मण ब्रह्मचारी और इससे जाने को कहना थोड़ी अशिष्टता हो सकती है, इसलिए स्वयं ही यहाँ से चला जाना उचित है और वह चल पड़ती हैं। एकदम से उठने से या जल्दी-जल्दी चल पड़ने से उसके स्तनों से वल्कल निर्मित-वस्त्र भी खिसक पड़ता है; जो पार्वती का हड़बड़ी में होना सूचित करता है। सम्भवतः कवि ने इसीलिए उसके लिए बाला पद का प्रयोग किया है जिससे हल्का सा अल्हड़पन सूचित होता है। भगवान् शंकर मुस्कराते हुए अपने असली रूप में आ जाते हैं और पार्वती को पकड़ लेते हैं। ब्रह्मचारी वेशधारी शंकर को पार्वती के सामने प्रकट होने का यही सही समय था। उसकी पर्याप्त परीक्षा ली जा चुकी थी और अपने को अदृश्य रखने का कोई औचित्य नहीं था।

व्याकरण –

इतः	–	इदम् + तसिल् (अव्यय पद)।
गमिष्यामि	–	गम् + ष्य + लृट् (तिप्) प्र०पु०, ए०व०।
वादिनी	–	वद् + णिनि (नन्द्यादि०) या वादोऽस्या अस्ति इति इनि प्रत्ययः स्त्री० प्र०वि०, ए०व०।
स्तनभिन्नवल्कला	–	स्तनाभ्यां भिन्नं (स्रस्तं) वल्कलं यस्याः सा (बहु०)।
चचाल	–	चल् + लिट्, द्वित्वकार्य (प्र०पु०, ए०व०)।
वृषराजकेतनः	–	वृषाणां राजा = वृषराजः, स केतनं (चिह्नं) यस्य सः (बहु०)।
स्वरूपम्	–	स्वस्य रूपम्, तत् (षष्ठी त० एवं द्वि०वि०, ए०व०)।
आस्थाय	–	आ + स्था + क्त्वा (ल्यप्) अव्यय पद।
कृतस्मितः	–	कृतं स्मितं येन सः (बहु०)।

सन् – अस् + लट् (शतृ) पुं०, प्र०वि०, ए०व०।

समाललम्बे – सम् + आ + लम्ब् + लिट् (आत्मनेपदी) प्र०पु०, ए०व०।

बोध प्रश्न 11

क) श्लोकानुसार किसने अपने स्वरूप को धारण किया?

.....

.....

ख) शंकर के ध्वज पर किसका चिह्न बताया गया है?

.....

.....

ग) लिट् लकार का प्रयोग सामान्यतया कब होता है?

.....

.....

घ) 'इतः गमिष्यामि' यह किसकी उक्ति है?

.....

.....

प्रसंग – वर्षों की कठिन तपस्या के पश्चात् अपने चिर अभिलषित प्रियतम शंकर को सामने देखकर पार्वती की स्थिति सम्मुख स्थित पर्वत से टकराई नदी के समान है। आगे बढ़ती हुई पार्वती न आगे बढ़ सकी, न ठहर सकी। तभी, इतने लम्बे समय तक पार्वती से तपस्या करवाने के कारण शंकर अब उसे प्यार से सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि तुमने मुझे तप से खरीद लिया है, मैं अब तुम्हारा दास हूँ –

श्लोक 12

अद्य प्रभृत्यवनताङ्गि तवास्मि दासः, क्रीतस्तपोभिरिति वादिनि चन्द्रमौलौ।
अह्नाय सा नियमजं क्लममुत्ससर्ज, क्लेशः फलेन हि पुनर्नवतां विधत्ते।।

कुमा० 5/86

अन्वय – हे अवनताङ्गि!, अद्य प्रभृति तपोभिः क्रीतः तव दासः अस्मि। चन्द्रमौलौ इति वादिनि सा अह्नाय नियमजं क्लमम् उत्ससर्ज। हि क्लेशः फलेन पुनः नवतां विधत्ते।

कठिन शब्द –

अवनताङ्गि = हे विनम्र अंगों वाली!, अद्य प्रभृति = आज से, तपोभिः = तपस्याओं के द्वारा, क्रीतः = खरीदा हुआ, तव = तुम्हारा, दासः = सेवक, अस्मि = मैं हूँ, चन्द्रमौलौ = चन्द्रमौलि (चन्द्रशेखर) शंकर के (ऐसा कहने पर), इति वादिनि = ऐसा कहने पर, सा = उसने (पार्वती ने), अह्नाय = शीघ्र, नियमजम् = नियमों (व्रतों) से उत्पन्न, क्लमम् = थकावट या कष्ट को, उत्ससर्ज = छोड़ दिया, हि = क्योंकि, क्लेशः = कष्ट, फलेन = फलप्राप्ति के द्वारा, पुनः = फिर, नवताम् = नये रूप को, विधत्ते = धारण करता है।

चन्द्रमौलि = मौलि सिर को कहते हैं। जिसके सिर पर चन्द्र हो। भगवान् शिव अपने सिर पर अर्द्ध चन्द्र को धारण करते हैं। इसी कारण उनके इस प्रकार के अनेक नाम हैं।

अनुवाद – 'हे झुके हुए अंगों वाली पार्वती! आज से मैं तपस्याओं से खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ, ऐसा चन्द्रशेखर भगवान् शंकर के कहने पर शीघ्र ही पार्वती ने व्रत-तप आदि से उत्पन्न क्लेश (कष्ट, थकावट) को छोड़ दिया। क्योंकि फल प्राप्त होने पर क्लेश नया रूप धारण कर लेता है।

व्याख्या अभ्यास 4

इसकी व्याख्या आप स्वयं लिखिए।

व्याकरण –

अवनताङ्गि	=	अवनतम् अङ्गम् यस्याः सा अवनताङ्गी, सम्बोधन में 'अवनताङ्गि' बना है।
प्रभृति	=	प्रभृति के योग में पञ्चमी विभक्ति होती है; जैसे – आरम्भात् प्रभृति अन्तः यावत्। यहाँ अद्य (आज) अव्यय है।
तपोभिः	=	तपस् का तृ० वि०, ब० व0।
क्रीतः	=	क्री + क्त (कर्मवाच्य में)।
अस्मि	=	अस् + लट् (उत्तम पु०, ए०व०)।
चन्द्रमौलौ	=	चन्द्रः मौलौ यस्य सः चन्द्रमौलिः, तस्मिन् (बहु०)।
नियमजम्	=	नियमात् जातम् (ड प्रत्यय)।
उत्ससर्ज	=	उत् + सृज् + लिट् (प्र०पु०, ए०व०)।
नवताम्	=	नव + तल्, (स्त्री० द्वि०वि०, ए०व०)।
विधत्ते	=	वि + धा + लट् (श्लु विकरण एवं द्वित्वकार्य) आत्मनेपदी, प्र०पु०, ए०व०)।

विशेष –

"शिव के सान्त्वना या चाटु वचन से पार्वती ने कष्ट तुरन्त त्याग दिये। फलप्राप्ति द्वारा कष्ट नया रूप धारण कर लेता है'' – इस वाक्य में पूर्वकथन का दूसरे कथन से समर्थन किया गया है; अतः अर्थान्तरन्यास अलंकार है। इस श्लोक में 'वसन्ततिलका' नामक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में क्रम से तगण, भगण, जगण, जगण, गुरु, गुरु होते हैं –

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग़ः''।

बोध प्रश्न 12

क) श्लोक में 'अवनताङ्गि' पद किसके लिए आया है?

.....

.....

ख) तपस्याओं से कौन खरीद लिया गया है?

.....

.....

ग) यहाँ 'नियम' पद किन अर्थों के लिए प्रयुक्त हुआ है?

.....

.....

घ) 'विधत्ते' में क्या धातु व लकार है?

.....

.....

ङ) 'अस्मि' क्रिया का कर्ता कौन है?

.....

.....

9.5 सारांश

इस इकाई में आपने कालिदासरचित कुमारसम्भव नामक महाकाव्य के पंचम सर्ग के अन्तिम भाग में पार्वती-तपस्या के पश्चात् उनकी परीक्षा लेने पहुंचे ब्रह्मचारी वेशधारी भगवान् शंकर एवं तपस्विनी पार्वती के बीच संवाद के कुछ श्लोक पढ़े। इस अध्ययन की प्रक्रिया में आपने श्लोक का अनुवाद और व्याख्या करना सीखा। अब आप जान गए हैं कि संस्कृत काव्य का अनुवाद या व्याख्या करने से पहले उसका अन्वय करना और कठिन शब्दों के एवं प्रसंगों का अर्थ खोजना आवश्यक है। व्याख्या के उपरान्त कविता की भाषा, उक्ति एवं भाव-सौन्दर्य पर टिप्पणी करना भी अपेक्षित है। अन्य कविताओं का अध्ययन भी आप इसी पद्धति से करते हुए उनके काव्य-सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त कर सकते हैं।

9.6 शब्दावली

किंवदन्ती – समाज में चली आ रही बातें अथवा जानकारी।

औचित्य – उचित होना, ठीक होना।

स्पृष्ट – छुआ हुआ, स्पर्श हुआ।

दिगम्बर – बिना कपड़े पहने हुए (दिशायें ही हैं वस्त्र जिसका)।

वचनीय – लोकनिन्दा या लोकोपवाद।

अधर – नीचे का होंठ।

वल्कल – वनस्पतियों से बने हुए वस्त्र, पेड़ का छाल।

9.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. कुमारसम्भव (1–5 सर्ग) लेखक – कालिदास
   व्याख्याकार – श्रीकृष्ण मुनि त्रिपाठी
   चौखम्बा - संस्कृत प्रतिष्ठान, बग्लों रोड, जवाहर नगर, दिल्ली।

2. संस्कृत साहित्य का इतिहास – डा० उमाशंकर शर्मा 'ऋषि'
   चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी।
   चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, बग्लों रोड, दिल्ली–7।

बोध प्रश्नों / अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

(क) श्रेष्ठ कुल में जन्म, अलौकिक सौन्दर्य, ऐश्वर्य सुख, नवीन अवस्था (ख) अमृग्यम्, (ग), प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति (घ) स्यात् (ङ) दोनों सकारान्त नपुंसकलिंग वाले।

बोध प्रश्न 2

(क) स्वर्ग की कामना एवं पतिप्राप्ति, (ख) पार्वती को, (ग) उपयन्ता (घ) कर्तृवाच्य।

व्याख्या अभ्यास 1

इस पद्य में ब्रह्मचारी रूपधारी शंकर ने पार्वती के लिए अवस्तु-निर्बन्धपरा अर्थात् तुच्छ वस्तु के लिए हठ करने वाली कहा है। वे कहते हैं कि शिव द्वारा चिता-भस्म, मृगचर्म, सर्प आदि को धारण किया जाना अमंगलजनक है। इससे शंकर की तुच्छता प्रकट होती है। उससे तुम प्यार करती हो और हठपूर्वक पाना चाहती हो। कल्पना करो जब तुम्हारा विवाह संस्कार होगा, उस समय तुम्हारे हाथ को विवाह सम्बन्धी मांगलिक वस्तुओं से सजाया गया होगा और शंकर का हाथ अमंगल वस्तुओं से जकड़ा हुआ होगा, उस गन्दे हाथ से जब वह प्रथम बार तुम्हारा हाथ पकड़ेगा, तुम्हारा हाथ उसके हाथ को कैसे सहन कर पायेगा? कितनी अजीब स्थिति होगी? अतः उसे पाने की इच्छा करना उचित नहीं है। ब्रह्मचारी शंकर की निन्दा, कर उसकी परीक्षा ले रहे हैं।

बोध प्रश्न 3

(क) अवस्तुनिर्बन्धपरे, (ख) दोनों ने हाथ में कुछ न कुछ धारण किया हुआ है, (ग) ल्युट् (अन) प्रत्यय, (घ) आत्मनेपदी।

बोध प्रश्न 4

(क) विवाहकालीन ग्रन्थि-बन्धन के समय (ख) गजासुर का चर्म (ग) पार्वती से, (घ) संगति बैठना, (ङ) कर्तृवाच्य।

बोध प्रश्न 5

(क) शारीरिक सुन्दरता, अच्छा कुल एवं सम्पन्नता, (ख) सुन्दर होना व चंचल होना, (ग) त्व एवं तल् प्रत्यय, (घ) विरूपाक्षम् व बालमृगाक्षि।

बोध प्रश्न 6

(क) शिव जी के लिए, (ख) अलोकसामान्य व अचिन्त्यहेतुक, (ग) लट् लकार, (घ) एतत् सर्वनाम।

व्याख्या अभ्यास 2

पार्वती बहुत कटु शब्दों से ब्रह्मचारी के कथनों का विरोध करती हैं। वह कहती हैं कि तुम यथार्थ रूप से हर (शिव) को नहीं जानते हो। तुम निश्चित रूप से शंकर को नहीं जानते हो; जिस वजह से मुझसे उनके विषय में इस प्रकार की उल्टी-उल्टी बातें कर रहे हो। महात्मा लोगों का चरित संसार में दिखाई देने वाले लोगों से अलग प्रकार का होता है। उनके इस प्रकार के चरित का कारण सामान्यजन अपनी वाणी या मन से नहीं जान सकते। मूर्ख लोग चूँकि उनके चरित को जान नहीं पाते, इसलिए उनसे द्वेष या उनकी निन्दा करते हैं। प्रकारान्तर से कहा गया है कि तुम भी मूर्ख ही हो, जो उन्हें समझ नहीं पा रहे हो और

उनकी निन्दा कर रहे हो। पार्वती के मन में इस कथन से शिव के प्रति बहुत आग्रह प्रतीत होता है। आगामी श्लोकों में सभी आरोपों का वह खण्डन करेंगी।

बोध प्रश्न 7

(क) ब्रह्मचारी, (ख) पितृसद्म, (ग) नञ् तत्पुरुष, (घ) एकवचन (ङ) भीमं रूपं यस्य सः।

बोध प्रश्न 8

(क) पिनद्धभोगि, (ख) व्यापक, (ग) पिनद्धभोगि, गजाजिनालम्बि एवं कपालि, (घ) षष्ठीतत्पुरुष, (ङ) कर्मवाच्य।

बोध प्रश्न 9

(क) भावैकरसम्, (ख) कामवृत्ति, (ग) ब्रह्मचारी, (घ) नपुंसक (ङ) मना करने अर्थ में प्रयुक्त 'अलम्' के कारण (यहाँ क्रिया गम्यमान रहती है)।

व्याख्या अभ्यास 3

पार्वती का ब्रह्मचारी से कहना है कि इस विषय में हम दोनों बहस करते रहेंगे तो बात कभी खत्म नहीं होगी; इसलिए विवाद करने से कोई लाभ नहीं है। तुमने शंकर के विषय में जैसा सुना है या जैसा कहा है, तुम वैसा ही मानते रहो, मैं इस विवाद में नहीं पड़ना चाहती। इस सन्दर्भ में मेरा बस इतना ही कहना है कि मेरा मन तो शंकर की प्राप्ति में दृढ़ है। मेरा मन तो शंकर आश्रित शृंगार रस में पूर्ण रूप से डूबा हुआ है और इस प्रकार कामवृत्ति (स्वेच्छाचारी, जो बिना ज्यादा सोचे मन की करता है) वाला व्यक्ति लोग क्या कहेंगे, इसकी परवाह नहीं करता। पार्वती कहती हैं कि तुम या कोई और व्यक्ति जो सोचता हो, सोचता रहे, मैं तो शंकर में पूर्णतः आसक्त हूँ।

बोध प्रश्न 10

(क) निन्दाश्रवण से बचना, (ख) निवार्यताम्।

बोध प्रश्न 11

(क) शिवजी ने, (ख) बैल का, (ग) बहुत पहले घटित भूतकाल के लिए, (घ) पार्वती।

बोध प्रश्न 12

(क) पार्वती, (ख) शिव, (ग) व्रत-तप, (घ) धा धातु व लट् लकार, (ङ) अहं (शिव अपने लिए कहते हैं)।

व्याख्या अभ्यास 4

सामने प्रिय शिव को देखकर पार्वती शर्म से थोड़ी झुक गई हैं, अतः उन्हें शंकर अवनताङ्गी कहकर सम्बोधित कर रहे हैं। वे पार्वती से कहते हैं कि तुमने मुझे अपनी तपस्याओं से खरीद लिया है – इसलिए हे गौरी, मैं आज से तुम्हारा दास हो गया हूँ। तुम जो कहोगी, करूंगा, तुम्हें और कष्ट उठाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। शंकर द्वारा इस प्रकार कहते ही पार्वती के सभी कष्ट तुरन्त खत्म हो गये। जिस बात को सुनने के लिए पार्वती को वर्षों तपस्या करनी पड़ी थी, वह उसे आज चमत्कार की तरह सुनने को मिल रही थी, इसलिए नाराज़ होने की बात ही नहीं थी। उसके सारे कष्ट क्षण भर में ही उड़ गये। कवि सशक्त समर्थन के द्वारा उक्त कथन की पुष्टि करता है कि फल प्राप्त होने पर क्लेश (कष्ट-तपस्या) का रूप ही बदल जाता है। वह दुःख का कारण न होकर एक नई ताजगी का कारण बन जाता है। यह स्फूर्ति ही क्लेश का नया रूप बन जाता है। यह स्वाभाविक भी है।

इकाई 10 गद्यकाव्य

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 गद्यकाव्य की परम्परा

10.2.1 उत्पत्ति एवं विकास

10.2.2 कथा और आख्यायिका

10.2.3 संस्कृत गद्यकाव्य की विशेषतायें

10.3 महाकवि बाणभट्ट : संस्कृत के श्रेष्ठ गद्यकार

10.3.1 जीवनवृत्त एवं कृतियाँ

10.3.2 महाकवि बाणभट्ट की शैली

10.4 कादम्बरी कथा : एक परिचय

10.4.1 कादम्बरी कथा : कथासार

10.4.2 शुकनासोपदेशसार

10.5 'शुकनासोपदेश' में वर्णित 'लक्ष्मी की प्रकृति' (स्वभाव)

10.6 सारांश

10.7 शब्दावली

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- गद्यकाव्य, गद्यकाव्य के भेदों विशेषकर कथा के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- संस्कृत वाङ्मय में बाणभट्ट के जीवन-वृत्त, वैदुष्य एवं उनके योगदान से परिचित होंगे।
- बाणभट्ट की कृतियों में 'कादम्बरी' का विशिष्ट महत्त्व है; आप 'कादम्बरी' कथा में दिये गये गद्यांश के आधार पर उसके 'शुकनासोपदेश' में वर्णित विशेष रूप से 'लक्ष्मी के स्वभाव' के रचना-सौन्दर्य से परिचित होंगे।
- आप संस्कृत शब्दों की विशिष्ट प्रयोग विधि का साक्षात्कार करेंगे।

10.1 प्रस्तावना

इस खण्ड की पहली इकाई में आपने पद्यकाव्य के कुमारसम्भव महाकाव्य के बारे में अध्ययन किया है। इस इकाई में हम आपको संस्कृत गद्य-साहित्य तथा प्रसिद्ध गद्यकार महाकवि बाणभट्टविरचित 'कादम्बरी' कथा में वर्णित 'शुकनासोपदेश' विषयक कथानक के विविध पक्षों के बारे में बतायेंगे।

संस्कृत गद्य का आरम्भ ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों के गद्य में देखा जा सकता है। बहुत दिनों तक सरल स्वाभाविक शैली में गद्य लिखने की परम्परा चलती रही। पद्यकाव्य के

विकास के साथ-साथ गद्यकाव्य में भी काव्य के उपादानों को प्रविष्ट कराने की प्रवृत्ति पनपी। आरम्भिक शताब्दियों में शिलालेखों के रूप में गद्यकाव्य प्राप्त होता है। इस दृष्टि से रुद्रदामन का गिरिनार शिलालेख (150 ई०) तथा हरिषेणरचित समुद्रगुप्त-प्रशस्ति (360 ई०) महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें गद्यकाव्य के उदाहरण प्राप्त होते हैं। संस्कृत में गद्यकाव्य की रचना बहुत कम हुई। ऐसे काव्य को स्मरण रखने का श्रम, आलोचकों की उपेक्षा और गद्यकाव्य का ऊँचा मानदण्ड – इन तीनों के कारण कविगण गद्य-रचना की ओर अभिमुख नहीं होते थे। इसीलिए गद्य-रचना संस्कृत भाषा में कम हुई। प्रायः छठीं-सातवीं शताब्दी ई० में कुछ महत्त्वपूर्ण गद्य कवि हुए जैसे – दण्डी, सुबन्धु और बाण।

संस्कृत गद्य-साहित्य में सर्वाधिक प्रतिभाशाली गद्यकार बाण ही हैं। इनकी रचना 'कादम्बरी' कवि-कल्पित कथानक पर आश्रित होने के कारण कथा नामक गद्य-काव्य है। इसमें वर्णित 'शुकनासोपदेश' (शुकनास नामक महामंत्री के द्वारा दिया गया उपदेश) में दिये गये गद्यांशों में 'लक्ष्मी के स्वभाव' का वर्णन विस्तृत रूप से किया गया है, जिसकी चर्चा आगे की जायेगी।

10.2 गद्यकाव्य की परम्परा

इसमें संस्कृत गद्यकाव्य की उत्पत्ति तथा विकास, गद्यकाव्य के भेदों एवं गद्य-काव्य की विशेषतायें-इन तीनों बिन्दुओं की चर्चा की जायेगी।

10.2.1 उत्पत्ति एवं विकास

संस्कृत में गद्य का प्रयोग वैदिक काल से होता आया है। 'कृष्ण यजुर्वेद', 'ब्राह्मण' तथा 'उपनिषद्' अधिकांश गद्य में ही हैं। तत्पश्चात् गद्य का प्रयोग महाभारत में दिखाई पड़ता है। यास्क का 'निरुक्त' गद्य में विरचित है, पतञ्जलि (50 ई०पू०) ने अपना 'महाभाष्य' गद्य में लिखा है। पद्य की अपेक्षा गद्य की श्रेष्ठता दिखलाने के लिये ही प्राचीन काल से यह उक्ति प्रचलित है – **'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति'** – 'गद्य ही कवियों की कसौटी है।' संस्कृत साहित्य में गद्य का उपयोग प्रधानतया टीकाओं में, व्याकरण-ग्रन्थों में तथा ज्योतिष-विषयक ग्रन्थों में हुआ है। काव्य माध्यम की दृष्टि से गद्य का स्थान पद्य की अपेक्षा गौण है और उसका प्रयोग कथाओं में, आख्यायिकाओं में तथा आंशिक रूप में नाटकों में हुआ है।

संस्कृत गद्य-काव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान अत्यन्त सीमित है। इसका उद्भव कब और कैसे हुआ? यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। गद्यकाव्य का सर्वप्रथम दर्शन दण्डी, सुबन्धु और बाण की कृतियों में होता है, वह भी पूर्ण विकसित रूप में। उनके पूर्व के लेखकों तथा रचनाओं का इतिहास अन्धकार में छिपा है। हाँ, इतना निश्चित है कि गद्यकाव्य भी संस्कृत-साहित्य की एक प्राचीन शाखा है। कात्यायन (300 ई०पू०) ने अपने 'वार्तिक' में 'आख्यायिका' का उल्लेख किया है। **'लुबाख्यायिकेभ्यो बहुलम्', आख्यानाख्यायिकेतिहासपुराणेभ्यश्च'–वार्तिक।** पतञ्जलि अपने 'महाभाष्य' में तीन आख्यायिकाओं का वर्णन करते हैं – वासवदत्ता, सुमनोत्तरा और भैमरथी। – **'अधिकृत्य कृते ग्रन्थे' बहुलं लुग्वक्तव्यः वासवदत्ता सुमनोत्तरा न च भवति भैमरथी। महाभाष्य (4/3/87)।** 'बृहत्कथा', 'पञ्चतन्त्र की कथायें तथा 'तन्त्राख्यायिका' में कथा और आख्यायिका (जो गद्यकाव्य के ही दो भेद हैं) का जो उल्लेख है, उनका गद्यकाव्य से कोई सम्बन्ध नहीं। पर यह निर्विवाद है कि गद्यकाव्य की सृष्टि लोक-कथाओं के माध्यम से पद्यकाव्य से ही हुई है।

कुछ उपलब्ध शिलालेखों से गद्यकाव्य का प्रचार एवं प्रसार स्पष्ट लक्षित होता है। जैसे – रुद्रदामन के शिलालेख (150 ई०) एवं गुप्तकालीन शिलालेख (400 ई०) में अलंकृत गद्य

शैली का प्रयोग हुआ है। इन प्रमाणों के आधार पर यही निष्कर्ष निकलता है कि गद्यकाव्य की कला का प्रचार दण्डी, सुबन्धु और बाण से कई शताब्दी पूर्व से हो रहा होगा, किन्तु इन गद्यकारों ने अनुपम तथा उत्कृष्ट गद्यकाव्यों के प्रभाव से अपने पूर्ववर्ती लेखकों को ऐसा आच्छादित कर दिया कि उनमें से बहुतों के नाम भी उपलब्ध नहीं होते दण्डी, सुबन्धु और बाण गद्यकाव्य के विकास-काल की चरमोन्नति के प्रतिनिधि लेखक हैं। इनसे पूर्व दीर्घ काल तक साहित्य के इस अंग का अभ्यास होता रहा होगा, यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं।

10.2.2 कथा और आख्यायिका

संस्कृत गद्य-साहित्य के प्रधान रूप से दो विभाग किये गये हैं – कथा और आख्यायिका। महाकवि दण्डी के अनुसार इनमें निम्नलिखित भेद हैं –

1) कथा कवि-कल्पित होती है, आख्यायिका ऐतिहासिक इतिवृत्त पर अवलम्बित।

2) कथा में स्वयं नायक अथवा अन्य कोई वक्ता रहता है, आख्यायिका में नायक स्वयं वक्ता होता है। आख्यायिका को हम एक प्रकार से आत्म-कथा कह सकते हैं।

3) आख्यायिका का विभाग अध्यायों में किया जाता है, जिन्हें 'उच्छ्वास' कहते हैं तथा उसमें वक्त्र और अपरवक्त्र छन्द के पद्यों का समावेश रहता है, पर कथा में नहीं।

4) कथा में कन्या-हरण, संग्राम, विप्रलम्भ, सूर्योदय, चन्द्रोदय आदि विषयों का वर्णन रहता है, पर आख्यायिका में नहीं।

5) कथा में लेखक किसी अभिप्राय से कुछ ऐसे विशेष शब्दों का प्रयोग करता है, जो उसे आख्यायिका से भिन्न स्थापित करते हैं।

10.2.3 संस्कृत गद्यकाव्य की विशेषतायें

संस्कृत गद्य-काव्यों के कथानक का मूल प्रायः लोककथाओं (Folktale) से लिया गया है। लोक-कथाओं की भाँति कथा में उपकथा का संनिवेश करने की प्रथा भी गद्यकाव्यों में दिखाई पड़ती है। किन्तु गद्य-काव्यों की व्यंजना-प्रणाली लोक-कथाओं से भिन्न है। उनकी शैली बहुत कुछ पद्य-काव्यों से प्रभावित हुई है। शिष्ट एवं सम्भ्रान्त वर्ग के लिये लिखे जाने के कारण इन गद्य-काव्यों में उत्कृष्ट एवं अलंकृत भाषा का प्रयोग तो हुआ ही है। साथ ही वर्णन-शैली का भी अत्यधिक परिष्कार हुआ है। दीर्घकाय समास, अनुप्रास, श्लेष, यमक, परिसंख्या आदि अलंकारों तथा सूक्ष्म पौराणिक संकेतों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। प्रकृति का विस्तृत चित्रण तथा नायक-नायिका की शारीरिक और मानसिक दशाओं का अतिरंजित वर्णन भी हुआ है। शृङ्गार रस ही इनका प्रधान रस है। लोक-कथाओं के सरल और प्रवाहयुक्त आख्यानों पर कल्पना और पाण्डित्य का गहरा रंग चढ़ाया गया है। कथा भाव गौण हो गया है और अलंकृत वर्णन-शैली की प्रधानता हो गई है। गद्य-काव्यों के व्यापक स्वभाव के कारण संस्कृत में व्यावहारिक गद्य-शैली का विकास बहुत कम दिखाई पड़ता है।

संस्कृत के गद्य-काव्य इस धारणा के पोषक हैं कि कविता के लिये छन्द अनिवार्य नहीं हैं; छन्दोबद्धता तो उसका केवल एक बाह्य परिच्छेद है। गद्य और पद्य दोनों में समान रूप से कविता की रचना हो सकती है। यही कारण है कि संस्कृत गद्य-काव्य सहृदयों के हृदय में वास्तविक काव्यानन्द का संचार करते हैं। यदि भाषा-सौष्ठव, वर्णन-नैपुण्य, कल्पना-वैचित्र्य, रसास्वाद, पदलालित्य, श्लेष-चातुर्य और अलंकार-वैभव इन समस्त काव्यात्मक गुणों का एकत्र अवलोकन करना हो तो संस्कृत के गद्यकाव्यों का अनुशीलन करना चाहिये। ऐसी

अलंकृत, उदात्त एवं परिष्कृत गद्य-शैली का विकास शायद ही किसी अन्य भाषा के साहित्य में हुआ हो।

आदौ दण्डी ततश्चासीत् सुबन्धुः श्लेषमार्मिकः।
तथा श्रीबाणभट्टश्च त्रयो गद्ये प्रकीर्तिताः।।

बोध प्रश्न 1

i) निम्नलिखित प्रश्नों के कोष्ठकों में दिए उत्तरों में से सही पर (√) का चिह्न लगाइए।

क) संस्कृत गद्य का प्रयोग कब से होता आया है? (वैदिक काल/लौकिक काल)

ख) पतञ्जलि की रचना क्या है? (अष्टाध्यायी/महाभाष्य)

ग) गद्यकाव्य के कितने भेद हैं? (दो/तीन)

घ) प्राचीनतम गद्यकार किसे माना जाता है? (सुबन्धु/दण्डी)

ii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) कवि-कल्पित कथानक ..... होती है।

ख) ऐतिहासिक इतिवृत्त पर आश्रित ..... होती है।

ग) संस्कृत गद्यकाव्यों के कथानक का मूल ..... से लिया गया है।

घ) आख्यायिका का विभाजन ..... में किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न 1

i) 'गद्यकाव्य' के दो भेदों को लिखिए।

(क) ..... (ख) .....

ii) 'महाभाष्य' में वर्णित तीन आख्यायिकाओं को लिखिए।

(क) ..... (ख) ..... (ग) .....

iii) 'गद्यकाव्य' से सम्बन्धित तीन विशेषताओं को तीन वाक्यों में लिखिए।

.....

.....

.....

10.3 महाकवि बाणभट्ट : संस्कृत के श्रेष्ठ गद्यकार

संस्कृत-गद्य-साहित्य में सर्वाधिक प्रतिभाशाली गद्यकार बाण ही हैं। यहाँ महाकवि बाणभट्ट के जीवन-वृत्त, कृतियों तथा उनकी गद्य-शैली आदि का वर्णन किया जा रहा है।

10.3.1 जीवन-वृत्त एवं कृतियाँ

महाकवि बाण संस्कृत गद्य-साहित्य के श्रेष्ठ कथाकार हैं। कवि कालिदास के पद्यों की सरसता, भावप्रवणता एवं कमनीयता यदि हमें कहीं दृष्टिगत होती है तो वह केवल बाणभट्ट का गद्य-साहित्य है। बाणभट्ट का गद्य ही पद्यात्मक है, अतः हम यह नहीं कह सकते कि

गद्य-कवि का पद्य पर अधिकार नहीं है; इसका ज्वलन्त उदाहरण "चण्डीशतक'' है। यद्यपि यह सत्य है कि गद्यकाव्य के सर्वश्रेष्ठ कलाकार पद्यकाव्य के कलाकार के रूप में उच्च स्थान पाने के अधिकारी नहीं है; तथापि उनके पद्यों में अपना सौन्दर्य है।

महाकवि बाणभट्ट के विषय में अन्य संस्कृत कवियों की अपेक्षा अधिक जानकारी प्राप्त होती है। 'हर्षचरित' के आरम्भ में इन्होंने अपना और अपने वंश का पूरा विवरण दिया है। ये वात्स्यायन-गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम चित्रभानु तथा माता का नाम राजदेवी था। अल्पावस्था में ही ये अनाथ हो गये थे। किन्तु विद्वानों के परिवार में जन्म लेने के कारण इन्होंने सभी विद्याओं का अभ्यास किया था। युवावस्था में अनेक कलाओं और विद्याओं के जानकार मित्रों की मण्डली बनाकर इन्होंने पर्याप्त देशाटन किया था। अनेक अनुभवों से सम्पन्न होकर अपने ग्राम प्रीतिकूट (शोण के तट पर) लौटे। हर्षवर्द्धन ने अपने अनुज कृष्ण के द्वारा इन्हें अपनी राजसभा में बुलाया। बाण राजकृपा से हर्ष की सभा में रहने लगे। हर्षवर्द्धन का समय 607 ई० से 648 ई० है। इसलिये बाण का स्थितिकाल सातवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध है।

बाणभट्ट ने दो गद्यकाव्य लिखे – 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी'। परम्परा बाणभट्ट को 'चण्डीशतक' का भी लेखक मानती है।

10.3.2 महाकवि बाणभट्ट की शैली

बाण ने गद्यशैली का आदर्श सूचित करते हुए 'हर्षचरित' के आरम्भ में लिखा है –

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्।।

अर्थात् मौलिक कल्पना, सुरुचिपूर्ण स्वभावोक्ति, अक्लिष्ट श्लेष, स्फुट रूप से प्रतीयमान रस तथा दृढबन्ध पदावली इन समस्त गुणों का एकत्र सन्निवेश दुर्लभ है। दूसरे के मन के भावों का यथातथ्य चित्रण **(अन्यचिन्तित-स्वभावाभिप्रायवेदकम्)** तथा अभिनव अर्थ की कल्पना (**उत्कृष्टकविगद्यमिव विविधवर्णश्रेणिप्रतिपाद्यमानाभिनवार्थसंचयम्**) को बाण उत्कृष्ट गद्य-शैली का प्रधान लक्षण मानते हैं।

बाण के गद्य की रीति 'पाञ्चाली' है, जिसमें अर्थ के अनुरूप ही शब्दों का गुम्फन होता है–

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चालीरीतिरिष्यते।
शिलाभट्टारिकावाचि बाणोक्तिषु च सा यदि। (सरस्वतीकण्ठाभरण)

बाण की शैली में शब्द और अर्थ, भाषा और भाव का रुचिर सामञ्जस्य स्पष्ट लक्षित होता है। विषय के अनुरूप ही शब्दावली का प्रयोग किया गया है।

बाण की शैली में अलंकारों का समुचित प्रयोग अपूर्व रमणीयता का संचार करता है। उनमें अलंकार की छटा दर्शनीय है। उनके लम्बे-लम्बे समास यदि गिरि-नदी के उद्दाम प्रवाह की भाँति हैं, तो उनकी श्लिष्ट उपमायें इन्द्रधनुष की छाया की भाँति उसे रंगीन बना देती हैं।

बाण का प्रकृति-चित्रण विशद्, सजीव, अलंकृत और उनकी सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचायक है। बाण का प्रकृति-चित्रण अन्तःप्रकृति के अनुरूप होता है। सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रमा, वसन्त ऋतु के वर्णन में यह विशेषता स्पष्ट दिखाई पड़ती है।

बाण की वर्णन-शक्ति अद्भुत है। 'कादम्बरी' के वर्णनात्मक स्थलों में वे कई प्रकार की शैलियों का प्रयोग करते हैं। कहीं वाक्यावली संक्षिप्त कर भावों का द्रुत वेग से उन्मेष करना आवश्यक प्रतीत होता है तो कहीं भाषा का प्रलोभन संवरण भी दुस्साध्य हो जाता है। जहाँ

विषय भाव-प्रधान, मार्मिक अथवा गम्भीर होता है, वहाँ उनकी शैली बड़ी ही सशक्त और प्रभावोत्पादक होती है। वाक्य छोटे-छोटे होते हैं; दीर्घ समासों का अभाव होता है और विशेषण पद न्यून होते हैं।

बाण की शैली में सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति, अलंकृत वर्णन-प्रणाली, प्रकृष्ट प्रकृति-प्रेम, उर्वर कल्पना, अजस्र शब्दराशि तथा मौलिक अर्थों की उद्भावना – ये सभी गुण सर्वत्र समान रूप से पाये जाते हैं। **"गद्यकाव्य कवियों की कसौटी है"** और इस कसौटी पर महाकवि बाण खरे उतरे। इससे सिद्ध होता है कि बाण ही ऐसे एक गद्य कवि हैं जिनके आदित्य का ज्वलन्त विक्रम फैलकर संस्कृत-गद्य साहित्य को देदीप्यमान कर रहा है तथा करता रहेगा। यही कारण है कि जिस भाषा में अपनी कृतियों की रचना की है, उसके पण्डितों ने उनकी शैली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। **'विदग्धमुखमण्डन'** के रचयिता धर्मदास किस विलक्षण ढंग से बाण की प्रशंसा करते हैं –

रुचिरस्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति।
सा किं तरुणी? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य।।

रुचिर स्वर, वर्ण तथा पदों से विभूषित, रस और भावों से अलंकृत वह संसार के चित्त को आकृष्ट कर रही है। क्या तुम किसी तरुणी की बात कर रहे हो?" "नहीं, मैं तो बाण की सरस मधुर वाणी के सम्बन्ध में कह रहा हूँ।"

बाण की सर्वव्यापिनी प्रतिभा को लक्ष्य में रखकर ही **'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'** कहा जाता है।

गोवर्धनाचार्य का कहना है कि जिस प्रकार पूर्व समय में अधिक प्रगल्भता प्राप्त करने के लिये शिखण्डिनी शिखण्डी बन गई थी, उसी प्रकार पुरुष रूप में अधिक चमत्कार पाने की अभिलाषा से वाणी (सरस्वती) ने बाण का अवतार लिया –

जाता शिखण्डिनी प्राक् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूव ह।।

'प्रसन्नराघव' के कर्ता जयदेव ने बाण को कविता-कामिनी के हृदय-मन्दिर में निवास करने वाला साक्षात् कामदेव ही बता दिया –

हर्षो हर्षः हृदयवसतिः पञ्चबाणस्तु बाणः।
केषां नैषः कथय कविता-कामिनी-कौतुकाय।।

बोध प्रश्न 2

i) कोष्ठक में दिये गये उत्तरों में से सही उत्तर चुनकर उसके आगे सही का निशान (√) लगाइए और अपने उत्तर को इकाई के अन्त में दिये गये उत्तर से मिलाइए।

क) संस्कृत गद्य-साहित्य के श्रेष्ठ कलाकार हैं। (सुबन्धु/बाण)

ख) बाणभट्ट की पद्यात्मक रचना है। (हर्षचरितम्/चण्डीशतकम्)

ग) बाण का स्थितिकाल है। (सातवीं/आठवीं)

घ) बाणभट्ट के ग्राम का नाम है। (सोनपुर/प्रीतिकूट)

ii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) बाणभट्ट की शैली ..... है।

ख) इनका प्रकृति-चित्रण ..... के अनुरूप होता है।

ग) गद्यकाव्य ..... की कसौटी है।

घ) 'बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्' यह उक्ति ..... से सम्बन्धित है।

ङ) बाण को 'पञ्चबाणस्तु बाणः' ..... ने कहा।

च) बाणभट्ट के पिता ..... एवं माता ..... थीं।

छ) इनकी रचना में विषय के अनुरूप ही ..... का प्रयोग किया गया।

ज) "वाणी बाणो बभूव' इस उक्ति को .....ने प्रयोग किया।

झ) 'प्रसन्नराघव' के कर्ता ..... हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

i) बाणभट्ट के जीवन-वृत्त को 5 वाक्यों में लिखिए।

ii) बाणभट्ट की शैली की 5 विशेषताओं को पाँच वाक्यों में लिखिए।

10.4 कादम्बरी कथा : एक परिचय

'कादम्बरी' महाकवि बाण की ही नहीं अपितु संस्कृत गद्य-साहित्य की एक अमर कीर्ति है। इसमें बाण के साहित्य का चरमोत्कर्ष मिलता है तथा 'कादम्बरी' कथाजगत् की सर्वोत्कृष्ट कृति है।

'कादम्बरी' का प्रमुख स्रोत – 'कादम्बरी' का अवलोकन करने के पश्चात् सहज ही यह जिज्ञासा उत्पन्न होती है कि क्या बाण के मस्तिष्क की ही यह उपज है या इसकी प्रेरणा किसी अन्य ग्रन्थ से बाण ने पायी। सूक्ष्म अवलोकन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'कादम्बरी' का मूल स्रोत गुणाढ्य की 'बृहत्कथा'' होना चाहिये; क्योंकि 'कादम्बरी' एवं 'बृहत्कथा' के रूपान्तर 'कथासरित्सागर'' में कथायें काफी कुछ समान हैं। बाण ने 'बृहत्कथा' की नीरस एवं निष्प्राण कथा को सजीव एवं सरस कथा के रूप में परिणत कर 'कादम्बरी' कथा का प्रणयन किया।

10.4.1 कादम्बरी कथा : कथासार

विदिशा नगरी के राजा शूद्रक एकदिन नवप्रभात की स्वर्णिम बेला में राजसभा में सिंहासनारूढ़ थे। उसी अवसर पर एक चाण्डालकन्या राजसभा में आई, जो कि अपने साथ पिंजड़े में वैशम्पायन नाम के अद्भुत एवं मेधावी तोते को लिये थी। राजा की प्रशंसा में तोते ने अपना दक्षिण पाद उठाया तथा श्लोक पढ़कर अभिवादन किया। कौतूहलवश राजा ने उसका परिचय जानना चाहा एवं तोते ने अपना परिचय देना आरम्भ किया, "महाराज मैं विन्ध्याटवी में अपने जन्म से जाबालि मुनि के आश्रम आने तक तथा जाबालि मुनि द्वारा वर्णित कथा को सुनाता हूँ। मेरे पूर्व जन्म का वृत्तान्त इस प्रकार है – उज्जयिनी में तारापीड नाम के एक राजा थे जिनकी रानी विलासवती थीं। राजा के कुशल मन्त्री का नाम शुकनास एवं शुकनास की पत्नी का नाम मनोरमा था। पुत्र न होने के कारण रानी दुःखी थीं, अतः राजा के द्वारा देवार्चन करने पर उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम चन्द्रापीड रखा गया एवं इसी दिन मन्त्री महोदय को भी पुत्र उत्पन्न हुआ; जिसका नाम ज्योतिषियों ने वैशम्पायन रखा। दोनों को एक समान अवसर दिये गये, फलस्वरूप दोनों विद्याध्ययन कर घर आये तथा राजा ने चन्द्रापीड का राज्याभिषेक किया। इस अवसर पर चन्द्रापीड मन्त्री शुकनास

के पास गये तथा उपदेश-ग्रहण किया; यही उपदेश, जो मन्त्री शुकनास के द्वारा युवावस्था में होने वाले दोषों से बचने के लिये चन्द्रापीड को राज्याभिषेक के समय दिया गया। 'कादम्बरी' कथा में 'शुकनासोपदेश' कहलाता है, जिसमें मन्त्री शुकनास ने युवावस्था के समय उत्पन्न दोषों के प्रभाव, गुरूपदेश-महिमा, लक्ष्मी की प्रकृति, राजाओं के प्रति लक्ष्मी के आचरण एवं प्रभाव, धूर्त-व´चना एवं राजप्रकृति तथा चन्द्रापीड पर उपदेश का प्रभाव आदि का कथन किया है। इन सभी प्रसंगों का विस्तार से वर्णन आगे किया जायेगा। राज्याभिषेक के पश्चात् मित्र वैशम्पायन के साथ चन्द्रापीड दिग्विजय के लिये निकल पड़े। तीन वर्ष तक दिग्विजय करने के पश्चात् शिकार खेलते हुए एक दिन चन्द्रापीड सुन्दर किन्नर दम्पति का पीछा करते हुए अच्छोद सरोवर तक पहुँच गये। अच्छोद सरोवर के किनारे वीणा पर गान करती हुई महाश्वेता नामक गन्धर्व कन्या को देखा तथा उससे संन्यासिनी बनने का कारण पूछा। महाश्वेता ने बताया कि एक समय पुण्डरीक और मैं एक दूसरे पर मोहित हो गये। विरह की आकुलतावश पुण्डरीक का अन्त हो गया; मैं भी मरने को उद्यत हुई पर चन्द्रमा ने यह आश्वासन दिया कि तुम पुण्डरीक से फिर मिलोगी; इसी आशा में मैं तपस्विनी बनकर यहाँ रहती हूँ।'' महाश्वेता की सखी कादम्बरी ने यह भी निश्चय किया है कि "महाश्वेता के प्रियतम के मिलने तक मैं भी अपना विवाह नहीं करुँगी।"

महाश्वेता चन्द्रापीड को कादम्बरी के यहाँ ले गयी तथा प्रथम साक्षात्कार में ही दोनों परस्पर मोहित हो गये। परन्तु राजा तारापीड का आदेश पाकर चन्द्रापीड वैशम्पायन को वहीं छोड़कर घर चले आये। बहुत दिन पश्चात् वैशम्पायन को आता न देखकर चन्द्रापीड खोजने निकले। महाश्वेता ने उन्हें बताया कि वे हमारे रूप पर मोहित हो गये। अतः मैंने उसे शुक (तोता) होने का शाप दे दिया और वह मर गया। दुःखद समाचार सुनकर चन्द्रापीड का भी शरीरान्त हो गया। कादम्बरी यह समाचार सुनकर मरने को तैयार हुई परन्तु आकाशवाणी द्वारा यह घोषणा हुई कि तुम दोनों को अपने पति पुनः मिल जायेंगे। अतः धैर्य धारण करो। जाबालि मुनि द्वारा अपने जीवन की इतनी कथा सुनकर मेरे मन में पुनः महाश्वेता के प्रति पूर्व प्रेम की स्मृति आई और मैं उड़ चला। बीच में ही इस चाण्डाल कन्या के द्वारा पकड़ लिया गया और आप के पास लाया गया। इसके अतिरिक्त अब मैं कुछ नहीं जानता। इतनी कथा कहकर शुक (तोता) मौन हो जाता है।

इसके पश्चात् चाण्डालकन्या ने राजा शूद्रक को बताया कि मैं पुण्डरीक की माता हूँ और आप चन्द्रापीड हैं। यह सुनकर राजा शूद्रक को पूर्व जन्म का स्मरण हो आया तथा राजा एवं शुक दोनों ने अपना शरीर त्याग दिया अर्थात् शाप की अवधि समाप्त हो गई।

इसके पश्चात् चन्द्रापीड एवं कादम्बरी का तथा पुण्डरीक एवं महाश्वेता का सुखद संयोग हुआ तथा सभी सुखपूर्वक रहकर अपना समय यापन (बिताने) लगे। इस अवसर पर उनके माता-पिता भी वहाँ पहुँच गये थे, जो एक-दूसरे से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। यही 'कादम्बरी' कथा का कथासार है।

10.4.2 शुकनासोपदेशसार

सर्वप्रथम आप इस बात पर ध्यान दें कि 'शुकनासोपदेश' बाणभट्ट की पृथक् रचना नहीं है, अपितु यह 'कादम्बरी' कथा नामक ग्रन्थ में वर्णित एक छोटा-सा प्रसंग है। इस प्रसंग में राजा तारापीड अपने पुत्र चन्द्रापीड का राज्याभिषेक करने से पूर्व उपदेश दिलाते हैं ताकि चन्द्रापीड युवावस्था में आने वाले दोषों से बच सके। सर्वशास्त्रपारङ्गत महामन्त्री शुकनास के द्वारा चन्द्रापीड को दिये गये उपदेश को ही, 'शुकनास का उपदेश' या 'शुकनासोपदेश' कहा जाता है। 'शुकनासोपदेश' में किन-किन विषयों पर मन्त्री शुकनास ने उपदेश दिया है, उनकी विस्तृत जानकारी इस शुकनासोपदेशसार के अध्ययन से प्राप्त होगी। 'कादम्बरी' कथासार के अध्ययन के पश्चात् अब आपको इसकी कथा समझने में समस्या नहीं होगी।

चन्द्रापीड का यौवराज्याभिषेक एवं शुकनास के पास जाना –

चन्द्रापीड के सभी विद्याओं में कुशलता प्राप्त कर लेने के पश्चात् उनके पिता तारापीड ने उन्हें युवराज पद का अधिकारी बनाने का निश्चय किया। चन्द्रापीड मन्त्रिवर शुकनास के पास गये तथा पूर्व से ही विनीत चन्द्रापीड को और भी अधिक विनीत बनाने के उद्देश्य से शुकनास ने चन्द्रापीड को उपदेश देना प्रारम्भ किया। शुकनास के शब्दों में 'कुमार चन्द्रापीड! तुमने सभी ज्ञातव्य विषयों को जान लिया है तथा सभी शास्त्रों का अध्ययन भली-भाँति कर लिया है। अतः तुम्हें कुछ भी उपदेश देना शेष नहीं है; किन्तु युवावस्था में उत्पन्न अज्ञान रूपी अन्धकार अत्यन्त गहन होता है एवं लक्ष्मी का मद अत्यधिक भीषण होता है। एतदर्थ इन अनर्थों से बचने के लिये मैं तुम्हें सावधान करता हूँ।

अनर्थ-परम्परा एवं युवावस्था का प्रभाव

नवीन यौवन, जन्मजात प्रभुता, धन-सम्पत्ति एवं ज्ञान का अभाव यह अनर्थों की अत्यन्त विशाल शृंखला है। इनमें से एक-एक भी अनर्थों का घर होते हैं, तब इनके समूह का क्या कहना? मानव-बुद्धि युवावस्था के आने पर शास्त्रज्ञानरूपी जल के प्रक्षालन से निर्मल होने पर भी प्रायः मलिन हो जाती है। युवकों की दृष्टि विषय-भोगों में आसक्त हो जाती है। इन्द्रियों को निरन्तर आकृष्ट करने वाली इच्छा अत्यन्त दुर्दमनीय तथा अन्त में अत्यधिक दुःखद होती है। जिस प्रकार कसैले पदार्थों के सेवन के पश्चात् जल मीठा लगता है, उसी प्रकार नवयौवन से अभिभूत अन्तःकरण वाले मानव के मन को आस्वादित होते हुये विषय भोग भी मधुर लगने लगते हैं। विषयों में अतीव आसक्ति मनुष्य को कुमार्ग में ले जाकर उसे नष्ट कर देती है।

गुरूपदेश-महिमा

जिस प्रकार कर्ण-गुहा में स्थित जल निर्मल होते हुए भी वेदना उत्पन्न करता है ठीक उसी भाँति गुरुओं के निष्कपट व कल्याणप्रद उपदेश भी दुष्टजनों के कान में पड़कर कष्टकर लगते हैं। वही गुरुवाक्य सत्पुरुषों के कान में पड़कर उनकी शोभा इस प्रकार बढ़ाते हैं, जिस प्रकार रात्रि के प्रारम्भ का शशि अत्यन्त सघन अन्धकार को भी दूर कर देता है; उसी प्रकार गुरूपदेश अत्यन्त मलिन काम क्रोधादि अवगुणों को दूर कर देता है। जिस भाँति बुढ़ापे में काले बाल सफेद हो जाते हैं उसी प्रकार गुरूपदेश भी दोषों को गुणों में परिवर्तित कर देता है।

गुरूपदेश सम्पूर्ण मलों के प्रक्षालन करने के लिये बिना जल का स्नान है। बालों में सफेदी उत्पन्न किये बिना जरा से रहित वार्द्धक्य है। मेदो दोष के बिना गुरुता है। सुवर्ण-निर्मित न होने पर भी उत्कृष्ट स्वर्णाभूषण है। सामान्य प्रकाश से रहित आलोक है। उद्वेग किये बिना ही उत्कृष्ट जागरण है।

राजाओं के लिये गुरूपदेश की महिमा अधिक है, क्योंकि उन्हें उपदेश देने वाले विरले ही होते हैं। भयवश लोग राजा का उसी प्रकार अनुसरण करते हैं जिस प्रकार ध्वनि का अनुगमन प्रतिध्वनि करती है। राजा लोग पहले उपदेश सुनते ही नहीं और सुनते भी हैं तो केवल हाथी की भाँति; इस कान से सुना और उस कान से निकाल दिया, जिससे गुरुओं को दुःखित ही होना पड़ता है।

लक्ष्मी की प्रकृति (स्वभाव)

इस संसार में परिचय न रखने वाली नीच लक्ष्मी ही है। मिल जाने के बाद भी यह बड़ी ही कठिनाई से स्थिर हो पाती है। योद्धा एवं हाथियों के संरक्षण में होते हुए भी भाग जाती है तथा परिचय का निर्वाह नहीं करती। यह भ्रमणशील है तथा शक्तिशाली नृप को भी छोड़कर

चली जाती है। जिस प्रकार लता वृक्षों पर चढ़ती है उसी प्रकार यह लक्ष्मी भी नीच पुरुषों का आलिङ्गन करती है। यह तरंग एवं बुलबुलों की भाँति चञ्चल है तथा भयंकर साहस से ही उत्कृष्ट होती है एवं क्षणिक शोभा उत्पन्न करने वाली है। विद्वान् को मानो सरस्वती से ईर्ष्यावश आलिङ्गन नहीं करती। स्वाभिमानी व्यक्ति का पागल के समान उपहास करती है। यह लक्ष्मी इस संसार में परस्पर-विरोधी बातों का नाट्य करती हुई भी शीतलता उत्पन्न करती है। रजोगुणयुक्त यह काम-क्रोधादि से रहित मानव में भी इनको ला देती है। यह ज्यों-ज्यों वृद्धि को प्राप्त होती है त्यों-त्यों दीपशिखा की भाँति बुरे कर्मों को ही जन्म देती है। यह तृष्णा रूपी विषलता के लिये जलधारा है। धर्माचरणरूपी चन्द्रमण्डल के लिये राहु जिह्वा है। संसार में ऐसा कोई नहीं जिसका लक्ष्मी ने आलिङ्गन कर बाद में ठगा न हो। चित्रलिखित होने पर भी चञ्चल है तथा चिन्तन करने पर ठगने वाली है।

राजाओं के प्रति लक्ष्मी का आचरण एवं प्रभाव

लक्ष्मी के द्वारा भाग्यवश अपनाये गये राजा विह्वल एवं समस्त दुराचारों के पात्र बन जाते हैं। ऐसा लगता है जैसे माङ्गलिक कलश के जल से इनकी निपुणता धो दी गई है। क्रोधादि अनेक बुराइयों के शिकार बनकर ये राजा अपना पतन नहीं जान पाते।

धूर्त-वञ्चना एवं राज-प्रकृति –

धूर्त लोग अपने स्वार्थ साधन में तत्पर राजा के धन रूपी मांस को खाने के लिये युद्ध रूपी पक्षी की भाँति, राजसभा रूपी कमलिनी में बगुले (वक) बने हैं। 'जुआ खेलना मनोरञ्जन है' ऐसा बताकर सभी की हँसी का पात्र बनते हैं। ये राजा भी चापलूसों द्वारा की गई प्रशंसा को अपना अभिनन्दन समझते हैं। स्वाभाविक प्रेम से आर्द्र-हृदय स्वजन, बन्धु ही उनके लिये विनष्ट करने योग्य होते हैं।

अतः हे राजकुमार! इस भयंकर शासन-व्यवस्था में तथा अन्धा बना देने वाले इस यौवन काल में आप ऐसा प्रयत्न करें ताकि लोग आपका उपहास न कर सकें एवं अपने पिता द्वारा विजित वसुन्धरा को पुनः जीतें।

चन्द्रापीड पर उपदेश का प्रभाव

शुकनास के उपदेश देकर शान्त हो जाने के पश्चात् उन निर्मल उपदेश-वचनों से मानो धुला हुआ, खिला हुआ, स्वच्छ किया हुआ, चमकाया सा प्रसन्नचित्त चन्द्रापीड क्षणभर शुकनास के पास ठहर कर घर चला गया।

बोध प्रश्न 3

i) निम्न प्रश्नों के कोष्ठक में दिए गए सही उत्तर पर सही का निशान (√) लगाइए।

क) संस्कृत गद्य-साहित्य की अमरकीर्ति है। (कादम्बरी / वासवदत्ता)

ख) 'कादम्बरी' का प्रमुख स्रोत है। (कथासरित्सागर / बृहत्कथा)

ग) राजा शूद्रक के राज्य का नाम है। (उज्जयिनी / विदिशा)

घ) उज्जयिनी के राजा का नाम है। (तारापीड / शुकनास)

ङ) चन्द्रापीड को उपदेश दिया। (जाबालि मुनि / शुकनास)

ii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) 'गुरूपदेशमहिमा' का वर्णन ..... में किया है।

ख) 'लक्ष्मी की प्रकृति' का वर्णन ..... में है।

ग) महाश्वेता ..... कन्या थी।

घ) महाश्वेता की सखी का नाम ..... है।

ङ) महाश्वेता का ..... से सुखद संयोग हुआ।

च) 'शुकनासोपदेश' का अर्थ ..... है।

अभ्यास प्रश्न 3

i) 'शुकनासोपदेश' में वर्णित अनर्थों के चार कारण बताइए।

ii) 'गुरूपदेश-महिमा' राजा के लिये क्यों आवश्यक है? इसे 4 वाक्यों में लिखिए।

iii) 'लक्ष्मी की प्रकृति' से सम्बद्ध छह विशेषताओं को लिखिए।

iv) 'राजाओं के प्रति लक्ष्मी के आचरण' को तीन वाक्यों में लिखिए।

10.5 'शुकनासोपदेश' में वर्णित 'लक्ष्मी की प्रकृति' (स्वभाव)

महाकवि बाणभट्ट विरचित 'कादम्बरी' के कथासार के अध्ययन के पश्चात् आप इससे भली-भाँति परिचित हो चुके हैं कि बाणभट्ट अपनी अद्भुत क्षमता से किस प्रकार अपनी कथा में विविध प्रकार के प्रसंगों अथवा विषयों का समावेश कर कथानक को आगे बढ़ाने एवं अपने कवित्व के मार्मिक चित्रण में सफल हुए हैं। कथानक के विस्तार-क्रम में चन्द्रापीड को राज्याभिषेक से पूर्व युवावस्था में उत्पन्न होने वाले दोषों से बचने के लिये मन्त्री शुकनास के द्वारा उपदेश दिया गया। जिसमें विशेष रूप से 'लक्ष्मी की प्रकृति' गुरूपदेश आदि वर्णित है। इसे ही 'शुकनासोपदेश' कहा गया है। शुकनासोपदेशसार के अध्ययन के पश्चात् आप इसके कथानक से पूर्णतः परिचित हो चुके हैं। अब विशेष रूप से 'लक्ष्मी की प्रकृति' (स्वभाव) का कतिपय मूल गद्यांशों के द्वारा वर्णन किया जा रहा है।

सर्वप्रथम लक्ष्मी के स्वभाव का वर्णन करने से पहले उनमें विद्यमान गुणों की उत्पत्ति कहाँ एवं किन-किन वस्तुओं से हुई है, उसका उल्लेख करना अपेक्षित है –

गद्यांश :– इयं हि सुभटखड्गमण्डलोत्प्लवनविभ्रमभ्रमरी लक्ष्मीः
क्षीरसागरात्-पारिजातपल्लवेभ्यो रागम्, इन्दुशकलादेकान्तवक्रताम्,
उच्चैःश्रवसश्चञ्चलताम्, कालकूटान्मोहशक्तिम्, मदिराया मदम्,
कौस्तुभमणेरतिनैष्ठुर्यम्, इत्येतानि सहवासपरिचय-वशाद्विरहविनोदचिह्नानि
गृहीत्वेवोद्गता।

शब्दार्थ : – सुभटखड्गमण्डलोत्प्लवनविभ्रमभ्रमरी=वीर सैनिकों के तलवार कलाप रूपी कमल वन में भ्रमर करने वाली भ्रमरी अर्थात् भौंरी। इयम् लक्ष्मीः=यह लक्ष्मी। हि=निश्चित रूप से। सहवासपरिचयवशात्=सहवास के परिचय के कारण से। पारिजातपल्लवेभ्यः रागम्=मन्दार के पल्लवों से अनुराग को। इन्दुशकलात् एकान्तवक्रताम्=चन्द्रमा की कला से अधिक टेढ़ापन। उच्चैःश्रवसः= उच्चैःश्रवा नामक घोड़े से। चञ्चलताम्=चपलता को। कालकूटात्=विष से। मोहशक्तिम्= मोहित करने वाली शक्ति को। मदिरायाः मदम्= मदिरा से उन्मादकता को। कौस्तुभमणेः अतिनैष्ठुर्यम्=कौस्तुभ मणि से अधिक निर्दयता को। इति एतानि= इन ऊपर कहे गये। विरहविनोदचिह्नानि=वियोग के समय मन को बहलाने के चिह्नों को। गृहीत्वा=ग्रहण करके। क्षीरसागरात्= दुग्ध समुद्र से। उद्गता इव= मानो निकली हो।

भाषानुवाद :– श्रेष्ठ योद्धाओं के तलवार रूपी कमलवन में भ्रमण करने वाली भ्रमरीरूपा यह लक्ष्मी साथ में रहने से परिचय बढ़ जाने के कारण वियोग के समय में मनोविनोद के चिह्न रूप में पारिजात के कोमल पल्लवों से राग (आसक्ति), चन्द्रकला से अत्यन्त कुटिलता, उच्चैःश्रवा नामक इन्द्र के घोड़े से चञ्चलता, हलाहल विष से मोहन-शक्ति, मदिरा से मादकता और कौस्तुभमणि से क्रूरता आदि लक्षणों को लेकर ही मानो यह लक्ष्मी क्षीरसागर से बाहर निकली है। यह लक्ष्मी कहीं भी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहती और न ही इसे वश में किया जा सकता है। अब यहाँ से लक्ष्मी के स्वभाव का वर्णन किया जा रहा है –

गद्यांश : – न ह्येवंविधमपरमपरिचितमिह जगति किञ्चिदस्ति, यथेयमनार्या। लब्धापि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुण-पाशसन्दाननिष्पन्दीकृतापि नश्यति।

उद्यामदर्पभटसहस्त्रोल्लासिता पञ्जरविधृताप्यपक्रामति।
मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपालितापि प्रपलायते।

अन्वय :– इह जगति नहि एवंविधं अपरं किञ्चित् अपरिचितम् अस्ति, यथा इयम् अनार्या। लब्धा अपि खलु दुःखेन परिपाल्यते। दृढगुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृता अपि नश्यति। उद्दामदर्प-भटसहस्त्रोल्लासितासिलतापञ्जरविधृता अपि अपक्रामति। मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटा परिपालिता अपि प्रपलायते।

शब्दार्थ :– इह जगति = इस संसार में। नहि एवंविधं = इस प्रकार के परिचय को नहीं रखने वाला। अपरम्=कोई दूसरा, अपरिचितम्=अपरिचित नहीं है, यथा इयम् अनार्या=जैसी यह दुष्ट लक्ष्मी है, लब्धा अपि खलु=प्राप्त हो जाने पर भी निश्चित रूप से, दुःखेन=कठिनाई से, परिपाल्यते=रखी जा सकती है। दृढगुणपाशसन्दाननिष्पन्दीकृतापि=राजोचित गुणसमूह के दृढ बन्धन से बाँधी जाने पर भी। नश्यति=नष्ट हो जाती है, उद्दामदर्पभटसहस्त्रोल्लासिता पञ्जरविधृतापि=उत्कट अंहकार वाले सहस्त्रों योद्धाओं के द्वारा चमकाये जाने वाले तलवार के समूह रूप पिञ्जरे में बन्द कर रखी जाने पर भी, अपक्रामति = भाग जाती है। मदजलदुर्दिनान्धकारगजघटितघनघटापरिपालितापि = गण्डस्थल (कपोल) से टपकने वाले मदजल से अन्धकार कर देने वाले गजराजों के द्वारा रचित सघन समूह से सुरक्षित रखी जाने पर भी, प्रपलायते=भाग जाती है।

व्याकरणम् – न आर्या =अनार्या (नञ् स०), लब्धा = लभ् + क्त + टा, परिपाल्यते = परि+पाल् + कर्मणि यक्, प्र०पु०, ए०व०।

भाषानुवाद :– निश्चय ही इस संसार में कोई दूसरी वस्तु ऐसी अपरिचित नहीं है, जैसी कि यह दुष्टा (लक्ष्मी) है; क्योंकि प्राप्त हो जाने पर बड़ी कठिनाई से पाली जाती है। राजोचित गुणों के बन्धन से दृढ रूप से बँधी हुई भी लुप्त हो जाती है, उत्कट अभिमान से युक्त हजारों योद्धाओं द्वारा उठायी हुई तलवार रूपी लताओं के पिञ्जरे में पकड़कर रखी हुई भी निकल जाती है। मदजलरूपी वर्षा से अन्धकार कर देने वाले हजारों हाथियों द्वारा रचित सघन समूह द्वारा सुरक्षित रखी जाने पर भी भाग जाती है।

गद्यांश :– न परिचयं रक्षति। नाभिजनमीक्षते। न रूपमालोकयते। न कुलक्रमनुवर्तते। न शीलं पश्यति। न वैदग्ध्यं गणयति। न श्रुतमाकर्णयति। न धर्ममनुरुध्यते। न त्यागमाद्रियते। न विशेषज्ञतां विचारयति। नाचारं पालयति। न सत्यमवबुध्यते। न लक्षणं प्रमाणीकरोति। गन्धर्वनगरलेखेव पश्यत (जनस्य अग्रतः) एव नश्यति।

शब्दार्थ :– (इयं लक्ष्मीः) परिचयं न रक्षति = परिचय नहीं रखती है, अभिजनम् = अच्छे कुल को, न ईक्षते = नहीं देखती है, रूपं न आलोकयते = सुन्दरता को नहीं देखती है; कुलक्रमं न अनुवर्तते = वंशपरम्परा का भी अनुसरण नहीं करती है, शीलं न पश्यति = शील

को भी नहीं देखती है, वैदग्ध्यं न गणयति =पाण्डित्य को भी नहीं विचारती है, श्रुतं न आकर्णयति = शास्त्र को श्रवण नहीं करती है, धर्मम् न अनुरुध्यते = धर्म का अनुरोध नहीं करती है, त्यागम् न आद्रियते = दान का आदर नहीं करती है, विशेषज्ञतां = विशेष जानकारी को, न विचारयति = नहीं विचारती है, आचारं न पालयति = सदाचार का पालन नहीं करती है, सत्यं न अवबुध्यते = सत्य को नहीं जानती है, लक्षणं न प्रमाणीकरोति = सामुद्रिक लक्षणों को नहीं मानती है, गन्धर्वनगरलेखा इव = भ्रम के कारण आकाश में दिखाई देने वाली नगराकार रेखा के समान, पश्यत एव = देखते हुए मनुष्य के सामने ही, नश्यति = नष्ट हो जाती है।

भाषानुवाद :– यह लक्ष्मी न परिचय के बन्धन को रखती है। न उत्तम कुल को देखती है। न सुन्दरता को देखती है। न चातुर्य को ही गिनती है। न शास्त्र को ही सुनती है। न धर्म का अनुसरण करती है। न त्याग का ही आदर करती है, न विशेषज्ञता का विचार करती है। न शिष्टाचार का पालन करती है। न सत्य को जानती है। न सामुद्रिक शास्त्रोक्त मनुष्य के शरीर में रहने वाले लक्षणों को ही प्रमाण बनाती है। गन्धर्वनगर की पंक्ति की भाँति देखते-देखते ही नेत्रों के सामने से अलक्ष्य हो जाती है।

दृष्टिभ्रम के कारण आकाश में जो नगर का आकार सा दिखाई देता है, उसे 'गन्धर्वनगर' कहते हैं।

यह लक्ष्मी बड़े राजाओं के घरों में अत्यन्त प्रयत्न से रखी गयी भी मानो अनेक गन्धगजों के गण्डस्थलों के मधुपान से मत्त हुई लड़खड़ाती रहती है। मानो क्रूरता सीखने के लिये तलवारों की धारों में निवास करती है। इतना ही नहीं यह लक्ष्मी समृद्ध राजाओं को भी त्याग देती है –

गद्यांश :– विश्वरूपत्वमिव ग्रहीतुमाश्रिता नारायणमूर्त्तिम्। अप्रत्ययबहुला च दिवसान्तकमलमिव समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलमपि मु´चति भूभुजम्।

शब्दार्थ :– विश्वरूपत्वं ग्रहीतुम् = अनेकरूपता को ग्रहण करने के लिये, नारायणमूर्तिम्=विराट् पुरुष भगवान् विष्णु का, आश्रिता इव = मानो आश्रय लिया हो, च = और, अप्रत्ययबहुला = किसी का तनिक भी विश्वास न करने वाली, दिवसान्तकमलम् इव = सन्ध्याकाल के कमलपुष्प के समान, समुपचितमूलदण्डकोशमण्डलम् = बढ़े हुए मित्रगण, कर, खजाना, साम्राज्य आदि वाले, भूभुजम् = राजा को, अपि = भी, मु´चति = त्याग देती है।

भाषानुवाद :– प्रायः विश्वास न करने वाली यह लक्ष्मी अच्छी तरह बढ़े हुए जड़, नाल, बीजकोश, समूह वाले दिन के अन्त के कमल के समान बढ़े हुए शूल (पैतृक रूप से प्राप्त राज्य कोशादि) दण्ड, कर, कोश और सामन्त समूह वाले राजा को भी त्याग देती है।

अति प्राचीन काल में भगवान् विष्णु ने देवताओं का उपकार करने के लिये वामन रूप धारण कर महाराज बलि के यज्ञ-स्थल पर पहुँचकर संकल्पपूर्वक तीन पग पृथ्वी दान में ली। अनन्तर विराट् स्वरूप धारण कर सम्पूर्ण भूमण्डल, आकाश आदि को तीन ही पग में नाप कर देवताओं को दे दिया तथा बलि को पाताल लोक में भेज दिया था। उसी समय के विराट् रूप के स्मरणार्थ 'नारायणमूर्तिम्' शब्द आया है।

गद्यांश :– लतेव विटपकानध्यारोहति। गङ्गेव वसुजनन्यपि तरङ्गबुद्बुद्चञ्चला। दिवसकरगतिरिव प्रकटित-विविधसंक्रान्तिः। पातालगुहेव तमोबहुला।

अन्वय :– लता इव विटपकान् अध्यारोहति। वसुजननी अपि (वसुजननी) गङ्गा इव तरङ्ग-बुद्बुद्च´चला। दिवसकरगतिः इव प्रकटितविविधसंक्रान्तिः। पातालगुहा इव तमोबहुला।

शब्दार्थ :– लता इव = बेल के समान, विटपकान् = नीच पुरुषों को, अध्यारोहति = आलिङ्गन करने लगती है। वसुजननी अपि = धनोत्पन्न करने वाली, गङ्गा इव = गंगा के समान, तरङ्गबुद्बुद्चञ्चला = लहरों और बुलबुलों के समान चञ्चल, दिवसकरगतिः = सूर्य की गति के समान, प्रकटितविविधसंक्रान्तिः = विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों में सञ्चरण करने वाली, पातालगुहा इव = पाताल की कन्दरा के समान, तमोबहुला = अधिक तमोगुण वाली।

भाषानुवाद : – वृक्षों पर चढ़ने वाली लता की भाँति यह लक्ष्मी नीच पुरुषों पर आरूढ़ हो जाती है। वसुओं की माता होते हुए भी लहरों और बुलबुलों से चञ्चल बनी, गङ्गा की भाँति यह लक्ष्मी धनोत्पन्न करने वाली होती हुई भी लहरों और बुलबुलों की भाँति चञ्चल है। अनेक राशियों में संक्रमण करने वाली दिवाकर की गति के समान विविध व्यक्तियों में संचरण करने वाली है एवं गहन अन्धकार से युक्त पाताल की गुफा के समान अत्यन्त तमोगुण वाली है।

यहाँ 'गङ्गा' के समान चञ्चल का भाव यह है एक बार वशिष्ठ के शाप से गङ्गा मनुष्य शरीर धारण कर राजा शान्तनु की स्त्री बनी, उनसे आठ वसु उत्पन्न हुए, उत्पन्न होते ही गङ्गा ने क्रमशः सातों बच्चों को गङ्गा में डाल दिया और वे स्वर्ग चले गये, वह जब आठवें को छोड़ने चलीं तो शान्तनु ने रोक दिया, जिससे तत्काल क्रोधित होकर गङ्गा स्वर्ग चली गयीं और बालक बच गया, आगे वही भीष्म पितामह कहलाया। अतः लक्ष्मी गङ्गा के समान चञ्चल हुई।

गद्यांश :– सरस्वतीपरिगृहीतमीर्ष्येव नालिङ्गति जनम्।

गुणवन्तमपवित्रमिव न स्पृशति। उदारसत्त्वमङ्गलमिव न बहु मन्यते।

सुजननिमित्तमिव न पश्यति।

अन्वय :– सरस्वतीपरिगृहीतम् जनम् ईर्ष्यया इव न आलिङ्गति। गुणवन्तम् अपवित्रम् इव न स्पृशति। उदारसत्त्वम् अमङ्गलम् इव बहु न मन्यते। सुजनम् अनिमित्तम् इव न पश्यति।

शब्दार्थ :– सरस्वतीपरिगृहीतं जनम् = सरस्वती के द्वारा स्वीकार किये गये विद्वान् को, ईर्ष्यया इव = मानो द्वेष के कारण, न आलिङ्गति = अंगीकार नहीं करती है, गुणवन्तम् = गुणी व्यक्ति को, अपवित्रम् इव = मानो अछूत समझकर, न स्पृशति= नहीं छूती है, उदारसत्त्वम् = उदार स्वभाव वाले व्यक्ति को, अमङ्गलम् इव = मानो अशुभ पदार्थ समझकर, बहु न मन्यते = अधिक सम्मान नहीं करती है, सुजनम् = भले व्यक्ति को, अनिमित्तम् इव = मानो अपशकुन समझकर, न पश्यति = नहीं देखती है।

भाषानुवाद :– सरस्वती द्वारा ग्रहण किये गये व्यक्ति को मानो ईर्ष्यावश आलिङ्गन नहीं करती। गुणी व्यक्ति को मानो अपवित्र मानकर स्पर्श नहीं करती। उदार हृदय वाले को मानो अशुभ समझकर बहुत नहीं मानती तथा यह लक्ष्मी सज्जन को मानो अपशकुन समझकर देखती नहीं है।

गद्यांश :– अभिजातमहिमिव लङ्घयति। शूरं कण्टकमिव परिहरति।

दातारं दुःस्वप्नमिव न स्मरति। विनीतं पातकिनमिव नोपसर्पति।

मनस्विनमुन्मत्तमिवोपहसति।

अन्वय :– (इयं लक्ष्मीः) अभिजातम् (जनम्) अहिम् इव लङ्घयति। शूरं कण्टकम् इव परिहरति। दातारं दुःस्वप्नम् इव न स्मरति। विनीतं पातकिनम् इव न उपसर्पति। मनस्विनम् उन्मत्तम् इव उपहसति।

शब्दार्थ :– अभिजातं जनम् = उच्चकुल में उत्पन्न मनुष्य को। अहिम् इव = सर्प के समान। लङ्घयति = लाँघ जाती है। शूरम् = वीर पुरुष को, कण्टकम् इव = काँटे के समान छोड़ देती है। दातारम् = दानी को, स्वप्नम् इव = अशुभ स्वप्न के समान। न स्मरति = स्मरण नहीं करती, विनीतम् = नम्र पुरुष को, पातकिनम् इव = पापी के समान जानकर, न उपसर्पति = समीप नहीं जाती, मनस्विनम् = मनस्वी पुरुष को, उन्मत्तमिव = पागल समझकर, उपहसति = उपहास करती है।

भाषानुवाद :– कुलीन व्यक्ति को मानो सर्प समझकर (यह लक्ष्मी) उसे लाँघ जाती है। शूरवीर को काँटा समझकर दूर से छोड़ देती है। दानी को मानो बुरा स्वप्न समझकर स्मरण नहीं करती। नम्र व्यक्ति को पापी समझकर उसके पास नहीं जाती तथा मनस्वी लोगों को पागल समझकर उनका उपहास किया करती है।

इस तरह लक्ष्मी में दिखाई पड़ने वाले स्वभाव का शुकनास के द्वारा वर्णन कर चन्द्रापीड को इससे अवगत कराया गया है। अन्य स्वभाव की विशेषतायें हैं जैसे –

अमृत की सगी बहन होने पर भी यह लक्ष्मी अन्त में कड़वी लगने लगती है। शरीर धारण करने वाली होती हुई भी प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ती है। पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु में अनुरक्त होती हुई भी दुष्ट लोगों की प्रिया है।

धूलमयी यह लक्ष्मी स्वच्छवस्तु को भी कलुषित कर देती है, और जैसे-जैसे यह चञ्चल लक्ष्मी प्रदीप्त होती है, वैसे-वैसे दीपशिखा की भाँति काजल के समान मलिन कर्मों को उगलती रहती है।

इस तरह लक्ष्मी की अन्य स्वभाविक विशेषताओं का वर्णन शुकनासोपदेश सार में वर्णित है। उपर्युक्त अध्ययन से आप भली-भाँति लक्ष्मी के स्वभाव से परिचित हो चुके हैं। साथ ही गद्यांशों का अन्वय, शब्दार्थ, व्याकरण, पौराणिक उल्लेख एवं भाषानुवाद करने में भी समर्थ हो सकेंगे।

बोध प्रश्न 4

i) निम्न प्रश्नों के सही उत्तर पर सही का निशान (√) लगाइए और इकाई के अन्त में दिये उत्तर से मिलाइये।

क) लक्ष्मी की उत्पत्ति हुई। (समुद्र से/क्षीरसागर से)

ख) लक्ष्मी में कुटिलता का लक्षण है। (इन्दुशकला से/सूर्य से)

ग) इन्द्र के घोड़े का नाम है। (चेतक/उच्चैःश्रवा)

घ) चञ्चलता लक्ष्मी में आई। (उच्चैःश्रवा से/नीलगाय से)

ङ) लक्ष्मी किस बन्धन को नहीं रखती है। (परिचय/शिष्टाचार)

ii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) उत्तम कुल को ..... नहीं देखती है।

ख) लक्ष्मी ..... का अनुसरण नहीं करती है।

ग) लक्ष्मी..... पंक्ति की भाँति देखते-देखते अदृश्य हो जाती है।

घ) लक्ष्मी ..... एवं ..... की भाँति चञ्चल है।

ङ) यह लक्ष्मी ..... व्यक्ति को ईर्ष्यावश आलिंगन नहीं करती है।

i) वर्णित गद्यांशों के आधार पर 'लक्ष्मी की प्रकृति' (स्वभाव) का वर्णन दस वाक्यों में कीजिए।

ii) अधोलिखित गद्यांश का अन्वय, शब्दार्थ एवं अनुवाद कीजिए। पौराणिक आख्यान भी लिखिए।

गद्यांश :– अमृतसहोदरापि कटुविपाका। विग्रहवत्यपि अप्रत्यक्षदर्शना। पुरुषोत्तमरतापि खलजनप्रिया।

10.6 सारांश

- संस्कृत गद्य-साहित्य की प्राचीन परम्परा से सम्बन्धित सभी जानकारियाँ जैसे–गद्य-काव्य की उत्पत्ति, गद्यकाव्य के भेद एवं रचना-परम्परा से आप पूर्णतः परिचित हो चुके हैं।
- महाकवि बाणभट्ट श्रेष्ठ गद्यकार कैसे माने जाते हैं? उनके स्थितिकाल, रचनाओं एवं काव्य-शैली की व्याख्या से आप अब भली-भाँति परिचित हो चुके हैं।
- 'कादम्बरी' कथा एवं 'शुकनासोपदेश' की कथावस्तु से संक्षेप में परिचित हो चुके हैं, अब आप इन दोनों के कथानक को भली-भाँति बता सकते हैं।
- 'कादम्बरी' में वर्णित 'शुकनासोपदेश' कथानक में समाविष्ट 'लक्ष्मी की प्रकृति' (स्वभाव) से सम्बन्धित जानकारियाँ कतिपय गद्यांशों के द्वारा दी गई हैं, अतः अब आप इससे भी परिचित हो चुके हैं।

10.7 शब्दावली

उपादान – आवश्यक सामग्री या तत्त्व।

अवलम्बन – आश्रित, आधृत।

चरमोन्नति – उन्नति के उच्चतम शिखर (सीढ़ी) पर।

कसौटी – परीक्षण का माध्यम।

दिग्विजय – सभी दिशाओं पर विजय प्राप्त करना।

कौतूहलवश – उत्सुकतावश, जिज्ञासा के कारण।

राज्याभिषेक – राजगद्दी पर बैठना (आसीन होना)।

सर्वशास्त्रपारङ्गत – सभी शास्त्रों में निपुण (ज्ञान होना)।

मेदोदोष – चर्बी से उत्पन्न दोष।

अनुशीलन – अनुसरण करना, अनुगमन करना।

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. शुकनासोपदेशः – श्री प्रह्लाद कुमार, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, प्रका०, दिल्ली।

2. शुकनासोपदेशः – श्री रामपाल शास्त्री, चौखम्भा प्रका०, वाराणसी।

3. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा – पाण्डेय एवं व्यास, साहित्य निकेतन प्रका०, कानपुर।

बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) (क) वैदिक काल (ख) महाभाष्य (ग) दो (घ) दण्डी।

ii) (क) कथा (ख) आख्यायिका (ग) लोककथाओं (घ) अध्यायों।

अभ्यास प्रश्न 1

i) (क) कथा (ख) आख्यायिका।

ii) वासवदत्ता, सुमनोत्तरा एवं भैमरथी।

iii) इसे आप स्वयं लिखिए।

बोध प्रश्न 2

i) (क) बाण (ख) चण्डीशतकम् (ग) सातवीं (घ) प्रीतिकूट।

ii) (क) पाञ्चाली (ख) अन्तःप्रकृति (ग) कवियों (घ) बाणभट्ट (ङ) जयदेव (च) चित्रभानु, राजदेवी (छ) शब्दावली (ज) गोवर्धनाचार्य (झ) जयदेव।

अभ्यास प्रश्न 2

इन प्रश्नों का उत्तर आप स्वयं लिखिए।

बोध प्रश्न –3

i) (क) कादम्बरी (ख) बृहत्कथा (ग) विदिशा (घ) तारापीड (ङ) शुकनास।

ii) (क) शुकनासोपदेश (ख) शुकनासोपदेश (ग) गन्धर्व (घ) कादम्बरी (ङ) पुण्डरीक (च) शुकनास के द्वारा चन्द्रापीड को दिया गया उपदेश।

अभ्यास प्रश्न 3

इन प्रश्नों का उत्तर आप अध्ययन कर स्वयं लिखिए।

बोध प्रश्न 4

i) (क) क्षीरसागर से (ख) इन्दुशकल से (ग) उच्चैःश्रवा (घ) उच्चैःश्रवा (ङ) परिचय।

i) (क) लक्ष्मी (ख) धर्म (ग) गन्धर्वनगर (घ) लहरें एवं बुलबुले (ङ) सरस्वती से जुड़े।

अभ्यास प्रश्न 4

i) इसका उत्तर आप स्वयं अध्ययन कर लिखिए।

ii) उत्तर :– अन्वय :– अमृतसहोदरा अपि कटुविपाका। विग्रहवती अपि अप्रत्यक्ष-दर्शना। पुरुषोत्तमरता अपि (इयं लक्ष्मीः) खलजनप्रिया (अस्ति)।

शब्दार्थ :– अमृतसहोदरा अपि = अमृत की छोटी बहन होते हुए भी। कटुविपाका = कड़वे परिणाम वाली, विग्रहवती अपि = शरीर धारण करने वाली होकर भी, अप्रत्यक्षदर्शना = प्रत्यक्ष दिखाई न देने वाली, पुरुषोत्तमरता अपि = पुरुषों में भगवान् विष्णु में आसक्त होते हुए भी, खलजनप्रिया = अधम पुरुषों से प्रेम करने वाली है।

भाषानुवाद :– अमृत की सगी बहन होने पर भी यह लक्ष्मी अन्त में कड़वी लगने लगती है। शरीर धारण करने वाली होती हुई भी प्रत्यक्ष नहीं दिखाई पड़ती है। पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु में अनुरक्त होती हुई भी दुष्ट लोगों की प्रिया है।

पौराणिक आख्यान :– समुद्र मंथन के समय अमृत के साथ ही यह लक्ष्मी भी उत्पन्न हुई अतः यह उसकी सगी बहन कही गयी। गीता में क्षर तथा अक्षर दो प्रकार के पुरुष बताये गये हैं; वहीं भगवान् ने अर्जुन से कहा कि मैं क्षर तथा अक्षर दोनों से परे हूँ, लोक तथा वेद- दोनों ही इसके प्रमाण हैं, अतः पुरुषोत्तम मैं ही हूँ।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 11 कथासाहित्य

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 कथासाहित्य की परम्परा

11.2.1 उत्पत्ति एवं विकास

11.2.2 नीतिकथा और लोककथा

11.3 महाकवि नारायण पण्डित : संस्कृत के नीतिकथाकार

11.3.1 परिचय

11.3.2 नारायण पण्डित की शैली

11.4 'हितोपदेश' नीतिकथा : एक परिचय

11.5 'हितोपदेश' के 'मित्रलाभ' परिच्छेद में वर्णित नीतिकथा

11.6 सारांश

11.7 शब्दावली

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :–

- कथा या आख्यान-साहित्य, कथासाहित्य के भेदों विशेषकर नीतिकथा के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- नीतिकथाओं के माध्यम से आप दैनिक व्यवहार तथा जीवन में उपयोगी सांसारिकता से परिचित होंगे।
- संस्कृत-साहित्य में 'हितोपदेश' की नीतिकथाओं का विशिष्ट महत्त्व है; आप 'हितोपदेश' से उद्धृत गद्यांश और पद्यांश के आधार पर रोचक कथाओं के रचना-सौन्दर्य से अवगत होंगे।
- आप संस्कृत-शब्दों की विशिष्ट प्रयोग-विधि का साक्षात्कार करेंगे।

11.1 प्रस्तावना

बी.ए. (संस्कृत) के आधुनिक भारतीय भाषा के अन्तर्गत कथासाहित्य की इस इकाई में हम संस्कृत कथा-साहित्य तथा प्रसिद्ध नीतिकथाकार महाकवि नारायण पण्डित विरचित 'हितोपदेश' में वर्णित रोचक कथाओं एवं उनके विविध पक्षों पर चर्चा करेंगे।

संस्कृत भाषा में आरम्भ से ही कथासाहित्य के रूप में नीतिकथाओं और लोककथाओं का साहित्य लिखा जाता रहा है। कथा के द्वारा बालकों को शिक्षित करने एवं जनसामान्य का मनोरञ्जन करने की प्रवृत्ति सभी देशों में रही है। प्राचीन भारत में भी कथा के माध्यम से बालकों की कल्पना-शक्ति को बढ़ाने का प्रयास किया गया था। मनोरञ्जन के विविध

माध्यमों में कथा कहना और सुनना बहुत समर्थ तथा शक्तिशाली साधन है। ब्राह्मणग्रन्थों, उपनिषदों, बौद्धजातकों तथा पुराणों में अनेक कथायें दी गई हैं, जिनसे शिक्षा और मनोरञ्जन दोनों उद्देश्य पूरे होते हैं।

11.2 कथासाहित्य की परम्परा

भारत का प्राचीनतम कथा-साहित्य 'पञ्चतन्त्र' है। इसके बाद कथा-साहित्य की अविच्छिन्न परम्परा आगे चलती रही है। इसी क्रम में 'हितोपदेश' का स्थान 'पञ्चतन्त्र' के बाद आता है, इसमें 'पञ्चतन्त्र' की ही अधिकांश कथाओं का समायोजन है।

11.2.1 उत्पत्ति एवं विकास

भारतीयों का जीवन प्रकृति से इतना घुला-मिला था कि पशु-पक्षियों के उदाहरण द्वारा बालकों को व्यावहारिक उपदेश देने की प्रथा वैदिक काल से ही चली आई है। मनुष्य और मछली की एक कथा ऋग्वेद में पाई जाती है। 'छान्दोग्य-उपनिषद्' में दृष्टान्त के रूप में 'उद्गीथ-श्वास' की कथा या आख्यान वर्णित है। 'रामायण' में कुछ नीति-कथाओं का संक्षिप्त उल्लेख या उपमाओं द्वारा संकेत किया गया है। पुराणों में तो अनेक नीतिकथाएँ वर्णित हैं। 'महाभारत' में विदुर के मुख से कई नीतिकथाएँ कहलाई गई हैं। तृतीय शताब्दी ई०पू० के भरहुत (Bharhut) स्तूप पर कई नीति-कथाओं के नाम खुदे हुए हैं–

– Macdonell : India's Past, p,117.

पतञ्जलि (150 ई०) ने अपने महाभाष्य में 'अजाकृपाणीय' और 'काकतालीय' जैसी लोकोक्तियों का प्रयोग तथा साँप और नेवले, कौए और उल्लू की जन्मजात शत्रुता का उल्लेख किया है। जैनों और बौद्धों ने भी अनेक नीति-कथाएँ रचीं। बौद्धों का 'जातक' नामक कथासङ्ग्रह 380 ई० पू० के लगभग था। इसके अतिरिक्त 668 ई० के एक चीनी विश्वकोष में कई भारतीय भाषाओं का अनुवाद उपलब्ध होता है। ये कथाएँ, जैसा कि उक्त विश्वकोष में निर्दिष्ट है, 200 बौद्धग्रन्थों से ली गई हैं।

– Macdonell : Sanskrit Literature,p. 369.

इन सब प्रमाणों के आधार पर स्पष्ट है कि ईसा के पूर्व भारतीय कथासाहित्य में नीतिकथाओं का पर्याप्त प्रचार था।

11.2.2 नीतिकथा और लोककथा

विश्व-साहित्य में भारत के कथा-साहित्य या आख्यान-साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। मौलिकता, रचना-नैपुण्य तथा विश्व-व्यापक प्रभाव की दृष्टि से वह अनुपम और अद्वितीय सिद्ध हो चुका है। भारतीय लोक-साहित्य के परिज्ञान के लिये भी संस्कृत आख्यानों का अनुशीलन आवश्यक है। इन आख्यानों में नाटक या महाकाव्यों की भाँति प्रख्यात पौराणिक अथवा ऐतिहासिक पात्रों या कथानकों का उपयोग नहीं हुआ है। इन आख्यानों या कथाओं में शुद्ध काल्पनिक जगत् का चित्रण किया गया है। उनमें कहीं कुतूहल है, कहीं घटना-वैचित्र्य, कहीं हास्य-विनोद है, कहीं गम्भीर उपदेश और कहीं सरस काव्य की मधुर झलक भी है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी हमारे कथासाहित्य की मौलिकता एवं मनोरञ्जकता की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

संस्कृत कथा-साहित्य को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है – (1) नीतिकथा (Didactic Tales) और (2) लोककथा (Popular Tales)।

1) **नीतिकथा** – नीतिकथाएँ जहाँ नीति-शास्त्र का ज्ञान कराती हैं, वहाँ वे संस्कृत भाषा की सरल एवं रोचक शैली का आदर्श भी उपस्थित करती हैं। कहानी का वर्णन प्रायः गद्य में होता है, किन्तु उससे मिलने वाली शिक्षा या नैतिक उपदेश का संकलन पद्य में किया जाता है। कहानी के बीच में भी यत्र-तत्र पद्यों का समावेश दिखाई पड़ता है। जब कोई पात्र कोई गम्भीर बात कहता है, तब उस पर बल देने के लिये वह पद्य का प्रयोग करता है। हृदयस्पर्शी मुहावरे, अनूठी लोकोक्तियाँ और रोचक दृष्टान्त सर्वत्र भरे पड़े हैं। इन कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें एक प्रधान कथा के अन्तर्गत कई गौण कथाओं का भी समावेश होता है। मुख्य कथा के पात्र अपनी बात के समर्थन में बीच-बीच में अनेक उप-कथाएँ कहने लगते हैं। उदाहरणस्वरूप–पञ्चतन्त्र, हितोपदेश आदि।

2) **लोककथा** – उपदेश-प्रधान नीतिकथाओं के अतिरिक्त मनोरञ्जक लोककथाओं का भी अस्तित्व संस्कृत साहित्य में पाया जाता है। नीतिकथाओं की विशेषताएँ लोककथाओं में भी दिखाई पड़ती हैं, किन्तु दोनों में प्रधान अन्तर यह है कि नीतिकथाएँ उपदेश-प्रधान होती हैं और लोककथाएँ मनोरञ्जन-प्रधान। साथ ही, लोककथाओं के पात्र पशु-पक्षी न होकर प्रायः मनुष्य ही होते हैं। उदाहरणस्वरूप–बृहत्कथा (गुणाढ्यकृत) आदि।

बोध प्रश्न 1

i) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तर पर (√) चिह्न लगाइए।

क) भारत का प्राचीनतम कथासाहित्य ..... है। (पञ्चतन्त्र / हितोपदेश)

ख) कथासाहित्य परम्परा में 'हितोपदेश' का स्थान ..... है। (दूसरा / तीसरा)

ग) कथा का उल्लेख सर्वप्रथम ..... में किया गया है। (ऋग्वेद / अथर्ववेद)

घ) "उद्गीथ श्वास'' की कथा ..... में वर्णित है। (कठोपनिषद् / छान्दोग्योपनिषद्)

ii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) 'महाभारत' में ..... के मुख से नीतिकथा कही गई। (विदुर / संजय)

ख) बौद्धों का कथासंग्रह ग्रन्थ ..... है। (जातक / सौन्दर्यनन्द)

ग) कथासाहित्य के ..... भेद हैं। (दो / तीन)

घ) ..... स्तूप पर नीतिकथा का उल्लेख मिला। (भरहुत / साँची)

अभ्यास प्रश्न 1

i) कथासाहित्य की उत्पत्ति एवं विकास को पाँच वाक्यों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

ii) नीतिकथा एवं लोककथा के अन्तर को पाँच वाक्यों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.3 महाकवि नारायण पण्डित : संस्कृत के नीतिकथाकार

संस्कृत कथा-साहित्य-परम्परा में नारायण पण्डित का द्वितीय स्थान है। हम आगे इनके जीवनवृत्त, कृतियों तथा इनकी शैली की चर्चा करेंगे।

11.3.1 परिचय

'हितोपदेश' के रचयिता महाकवि नारायण पण्डित थे। इनके जीवन के विषय में विशेष जानकारी नहीं प्राप्त होती। इनके आश्रयदाता बंगाल के कोई राजा धवलचन्द्र थे। इनकी एक कृति 'हितोपदेश' प्राप्त होती है। जिसकी एक पाण्डुलिपि 1373 ई० में प्राप्त हुई। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि इस ग्रन्थ की रचना 14वीं शताब्दी के पूर्व ही हो चुकी थी।

11.3.2 नारायण पण्डित की शैली

'हितोपदेश' की शैली सरल और मुहावरेदार है। भाषा विषय के सर्वथा अनुरूप है। मुख्यतः बालकों के लिये रचित होने के कारण उसका गद्य अत्यन्त सुबोध है, समास बहुत कम या छोटे हैं, वाक्य-विन्यास में किसी प्रकार की दुरूहता नहीं है। कथानक का वर्णन गद्य में किया गया है, पर उपदेशात्मक सूक्तियाँ पद्य में निहित हैं। इसमें 'पञ्चतन्त्र' की अपेक्षा पद्यों की संख्या अधिक है। कहीं-कहीं इन पद्यों का बाहुल्य इतना अधिक हो गया है कि कथा-प्रवाह में व्याघात सा पड़ जाता है। ये पद्य कई प्राचीन ग्रन्थों से उद्धृत हैं, जैसे–महाभारत, जातकसंग्रह तथा कामन्दकीयनीतिसार आदि। लेखक की कुशलता इन पद्यों के चुनने में तथा उनको कथानक में यथास्थान निपुणतापूर्वक उपस्थापित करने में है। ये पद्य अत्यन्त उपदेशपूर्ण एवं कण्ठाग्र करने योग्य हैं। संस्कृत सीखने वाले विद्यार्थियों को सरल होने के कारण पहले प्रायः 'हितोपदेश' ही पढ़ाया जाता है।

बोध प्रश्न 2

i) निम्न प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) चिह्न लगाइए।

क) संस्कृत कथा-साहित्य-परम्परा में द्वितीय स्थान किस नीतिकार का है? (नारायण पण्डित / विष्णु शर्मा)

ख) संस्कृत सीखने वाले विद्यार्थियों को आरम्भ में कौन सा ग्रन्थ पढ़ाया जाता है? (हितोपदेश / पञ्चतन्त्र)

ग) हितोपदेश ग्रन्थ के रचयिता कौन थे? (विष्णु शर्मा / नारायण पण्डित)

घ) नारायण पण्डित ने किस राज्य में आश्रय लिया था? (उड़ीसा / बंगाल)

ii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

क) नारायण पण्डित के आश्रयदाता राजा ..... थे। (बल्लाल सेन/धवलचन्द्र)

ख) 'हितोपदेश' की पाण्डुलिपि ..... ईस्वी में पाई गई। (1450/1373)

ग) हितोपदेश' में उपदेशात्मक कथन ..... में है। (गद्य/पद्य)

घ) 'हितोपदेश' में गद्य की अपेक्षा ..... की संख्या अधिक है। (गीति/पद्य)

अभ्यास प्रश्न 2

i) 'हितोपदेश' में पद्यों का संग्रहण किन प्राचीन ग्रन्थों से किया गया है?

.....

.....

.....

.....

.....

ii) 'हितोपदेश' की शैली को पाँच वाक्यों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.4 'हितोपदेश' नीतिकथा : एक परिचय

संस्कृत साहित्य में स्थान-स्थान पर आदर्श या उपदेश की प्रवृत्ति स्पष्ट लक्षित होती है। काव्यों और नाटकों में ऐसे अनेक पद्य मिलते हैं, जिनमें सूक्तियों के रूप में नीति या सदाचार का उच्च आदर्श उपस्थित किया गया है। इसी उपदेशात्मक प्रवृत्ति का मनोरञ्जक परिपाक नीतिकथाओं में हुआ है। नीतिकथाओं का उद्देश्य रोचक कहानियों द्वारा त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काम) का उपदेश देना है। यह उपदेश मोक्ष या अध्यात्मविद्या से सम्बन्ध नहीं रखता। नीतिकथाओं का प्रतिपाद्य विषय सदाचार, राजनीति और व्यावहारिक ज्ञान है। दैनिक जीवन में सफलता और उन्नति प्राप्त करने के लिये जिन-जिन बातों का पद-पद पर ध्यान रखना आवश्यक है और जिनके न जानने से मनुष्य अनायास ही धूर्तों के घेरे में फंस सकता है, उन्हीं बातों का उपदेश नीतिकथाओं के द्वारा दिया गया है। पशु-पक्षियों की रोचक कहानियों के रूप में सदाचार और राजनीति के गूढ़ से गूढ़ सिद्धान्त बड़ी सरलता से समझा दिये गये हैं। इन मनोरञ्जक कहानियों की सहायता से सुकुमार मति बालक भी अनायास ही इन सिद्धान्तों को हृदयंगम कर सकते हैं। इनमें पशु-पक्षी मनुष्यों के समान ही सारे कार्य करते हैं। मनुष्यों की भाँति वे बोलते हैं, और मनुष्यों के समान ही आपस में प्रेम, कलह या सन्धि भी करते हैं।

महाकवि नारायण पण्डित विरचित 'हितोपदेश' भी एक नीतिकथा है; जिसमें नीतिकथा की सारी विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। इस दुस्तर संसार-सागर से सुखपूर्वक पार होने के लिये नीतिशास्त्र ही एक नौका है, जिसका अवलम्बन लेकर निर्बल मनुष्य भी सुख से बड़े-बड़े कठिन सागरों को पार कर आनन्द लेते हैं, और जो इसकी उपेक्षा करते हैं, वे अवश्य ही संसार के भंवरों में पड़ दुःखी होते हैं। 'नीति' मोटे रूप से दो तरह की होती है – एक धर्मनीति तथा दूसरी राजनीति, सर्वसाधारण को भी राजनीति के बिना एक पद मात्र चलना कठिन हो जाता है। यह राजनीति के उन जगद्विख्यात अपूर्व ग्रन्थों का सरल संग्रह है; जिन नीति ग्रन्थों के कारण आज देश का सौभाग्य-सूर्य चमक रहा है, जिसके संग्रहकर्ता महाकवि नारायण पण्डित हैं। 'हितोपदेश' की रचना का बहुत कुछ आधार 'पञ्चतन्त्र' है। हितोपदेश की प्रस्तावना में यह बात स्वीकार की गई है –

"मित्रलाभः सुहृद्भेदो विग्रहः सन्धिरेव च।
पञ्चतन्त्रात्तथाऽन्यस्माद्ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते"।।

इस तरह पण्डित जी ने इसे 'हितोपदेश' यह अन्वर्थ नाम देकर अपने अपूर्व पाण्डित्य का परिचय कराया है।

'हितोपदेश' की 43 कथाओं में से 24 तो 'पञ्चतन्त्र' से ही ली गई हैं।

'हितोपदेश' में चार परिच्छेद हैं – मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि। प्रथम दो परिच्छेद प्रायः 'पञ्चतन्त्र' से लिये गये हैं।

यह ग्रन्थ कितना उपयोगी है, इस सम्बन्ध में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि आज भी यह ग्रन्थ विदेशियों में बड़े आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

इसके अरबी, फारसी आदि कई भाषाओं में अनुवाद भी पाये जाते हैं, तथा वर्तमान संस्कृत शिक्षा-प्रणाली में सर्वत्र प्रचलित है।

इस ग्रन्थ के पहले परिच्छेद में – मित्रों की प्राप्ति, उनके गुण, दोष, सज्जनों की संगति, दुर्जनों का त्याग, आत्मीयजनों की रक्षा, अहिंसा, विश्वास, सत्य, उद्योग, विद्या, असत्य, लोभ, स्त्रियों के दोष, संहति, आतिथ्य, महत्त्व, अनुरक्ति-विरक्ति के लक्षणों के साथ ही इन्द्रियों का संयम, धन की निन्दा आदि का वर्णन बड़ी सरल तथा मधुर बालबोधिनी कथाओं के द्वारा किया गया है।

दूसरे परिच्छेद में – मित्रों में फूट, धन को बढ़ाने के उपाय तथा स्त्रियों के गुप्त व्यभिचार, बुद्धि की कुशलता और नैतिक विषयों की चतुरता का परिचय – पक्षियों की ललित कथाओं के द्वारा पूर्ण रूप से किया गया है।

तीसरे परिच्छेद में – राजाओं में परस्पर युद्ध का समय, सैन्यबल, दुर्गबल, कोश, प्रकृति तथा सज्जन-दुर्जन मन्त्रियों के लक्षणों का भी उपाख्यान किया गया है, तथा उनके जीतने के उपाय, चढ़ाई करने की चतुरता, शत्रुओं को वश में करने के उपायों के उदाहरण कथाओं के द्वारा बतलाये गये हैं।

चौथे परिच्छेद में – सन्धि-प्रकरण में शत्रु को जीतने पर सन्धि करने के उपाय, रीति और सन्धियों के लक्षण आदि को श्लोकों तथा कथाओं के द्वारा दिखलाया गया है।

बोध प्रश्न 3

i) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर (√) चिह्न लगाइए।

क) नीतिकथा का आरिम्भक रूप मिलता था। (सूक्ति में/गद्य में)

ख) नीतिकथा का उद्देश्य है। (त्रिवर्ग उपदेश/पुरुषार्थ उपदेश)

ग) 'नीति' कितने प्रकार की होती है? (दो/तीन)

घ) 'हितोपदेश' में कथाओं की संख्या है। (43/45)

ii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) 'हितोपदेश' में 'पञ्चतन्त्र' से ..... कथाएँ ली गई हैं। (25/24)

ख) 'हितोपदेश' में दो परिच्छेद ..... से लिये गये हैं। (पञ्चतन्त्र/बृहत्कथा)

ग) 'सज्जनों की संगति' का वर्णन ..... परिच्छेद में है। (मित्रलाभ/सुहृद्भेद)

घ) 'सैन्यबल, दुर्गबल एवं कोश' आदि का वर्णन ..... परिच्छेद में है। (सुहृद्भेद/विग्रह)

अभ्यास प्रश्न 3

i) 'हितोपदेश' नीतिकथा का सारांश दस वाक्यों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) 'मित्रलाभ' की विषयवस्तु का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.5 'हितोपदेश' के 'मित्रलाभ' परिच्छेद में वर्णित नीतिकथा

नीतिकथाओं की सबसे प्रमुख विशेषता यह होती है कि उनमें एक प्रधान कथा के अन्तर्गत कई गौण कथाओं का भी समावेश होता है। 'हितोपदेश' के इस परिच्छेद में हम एक, दो रोचक कथाओं की चर्चा करेंगे, जिसमें नीतिशास्त्रोपदेश की बातें कही गई हैं, साथ ही मुख्य कथा के पात्र अपनी बात के समर्थन में बीच-बीच में अनेक उपकथाएँ कहने लगते हैं; आप इन सभी जानकारियों से अवगत होंगे।

कथा का आरम्भ इस प्रकार हुआ है। सर्वप्रथम प्रस्तावना में पाटलिपुत्र के राजा सुदर्शन का वर्णन है, उसमें राजा के सभी गुण विद्यमान थे, किन्तु पुत्रों ने ठीक ढंग से शिक्षा-ग्रहण नहीं की एवं गलत मार्ग की ओर प्रवृत्त हो रहे थे। राजा ने अपने पुत्रों को नीतिशास्त्र पढ़ाने की इच्छा से एक पण्डितों की सभा बुलाई, क्योंकि कहा भी गया है कि –

कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः।
काणेन चक्षुषा किं वा चक्षुःपीडैव केवलम्।।

प्रस्तावना पद्य सं० = 12

अर्थात् उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ, जो कि न विद्वान् हो और न धार्मिक, जिस तरह कानी आँख से कोई लाभ नहीं होता, वह केवल पीड़ा के लिये होती है।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।
परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।

प्रस्तावना पद्य = 14

उसी का जन्म लेना सफल है, जिसके जन्म से अपने वंश की उन्नति होती है। इस तरह तो इस परिवर्तनशील संसार में कौन मरता-जीता नहीं है।

वरमेको गुणी पुत्रो, न च मूर्खशतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणोऽपि च।। 17 ।।

यानी सौ पुत्रों की अपेक्षा एक ही पुत्र गुणी हो तो अच्छा है, जैसे बहुत से तारों से जो अन्धकार दूर नहीं होता उसे अकेला चन्द्रमा दूर करता है।

पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः क्वाप्यतिदुष्करम्।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धो धार्मिकः सुधीः।। 18 ।।

जिस मनुष्य ने किसी पुण्यतीर्थ में कठिन तपस्या की हो उसी का पुत्र वश्य (आज्ञाकारी), धनी, धार्मिक तथा विद्वान् होता है।

मातृपितृकृताभ्यासो गुणितामेति बालकः।
न गर्भच्युतिमात्रेण पुत्रो भवति पण्डितः ।। 37 ।।

बालक माता-पिता के अभ्यास कराने से ही गुणी होता है। जन्म लेते ही कोई बालक पण्डित नहीं होता।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।।

न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये वको यथा ।। 38 ।।

वह पिता तथा माता दोनों शत्रु हैं, जिन्होंने अपने लड़के को नहीं पढ़ाया। क्योंकि हंसों के बीच में बगुले की तरह वह विद्वानों के बीच में शोभा नहीं देता।

इस तरह सोच विचार कर राजा ने पण्डितों की एक सभा की। राजा ने सब पण्डितों से पूछा कि आप लोगों में कोई ऐसा योग्य विद्वान् है कि जो बुरे रास्ते पर चलने वाले मेरे मूर्ख पुत्रों को नीतिशास्त्र का उपदेश कर उनका द्वितीय जन्म करा दे, अर्थात् उन्हें सुधार दे।

इसी बीच में बृहस्पति के समान सब नीतिशास्त्र के तत्त्व को जानने वाले बहुत बड़े विद्वान् विष्णुशर्मा बोले – हे राजन्! ये राजकुमार उच्च कुल के हैं; इसलिये मैं इन लोगों को

नीतिशास्त्र का उपदेश दे सकता हूँ। इस तरह राजा ने अपने पुत्रों को विष्णुशर्मा को सौंप दिया। तत्पश्चात् पण्डित विष्णुशर्मा ने कथा के माध्यम से चार परिच्छेदों में राजपुत्रों को नीतिशास्त्रोपदेश दिया।

सर्वप्रथम हम 'मित्रलाभ' परिच्छेद से सम्बद्ध कथा की जानकारी देते हैं –

विष्णुशर्मा राजपुत्रों से बोले –

असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः।
साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत्।।

मित्रलाभ : पद्य०–2

उपायरहित, धनहीन, बुद्धिमान् और दृढ मैत्री वाले पुरुष अपने कार्य को शीघ्र सिद्ध कर लेते हैं, जैसे कि कौआ, कछुआ, मृग और चूहे ने किया।

राजपुत्रा ऊचुः – "कथमेतत् ?" विष्णुशर्मा कथयति

राजपुत्र बोले – यह कैसे? विष्णुशर्मा कहते हैं –

अस्ति गोदावरीतीरे विशालः शाल्मलीतरुः। तत्र नानादिग्देशादागत्य रात्रौ पक्षिणो निवसन्ति। अथ कदाचिदवसन्नायां रात्रावस्ताचलचूडावलम्बिनि भगवति कुमुदिनीनायके चन्द्रमसि लघुपतनकनामा वायसः प्रबुद्धः कृतान्तमिव द्वितीयमायान्तं व्याधमपश्यत्। तमवलोक्याचिन्तयत् – "अद्य प्रातरेवानिष्टदर्शनं जातं, न जाने किमनभिमतं दर्शयिष्यति", इत्युक्त्वा तदनुसरणक्रमेण व्याकुलश्चलितः।

अनुवाद :– गोदावरी नदी के तट पर एक विशाल सेमल का पेड़ है। वहाँ रात्रि में भिन्न भिन्न दिशाओं और स्थानों से आकर पक्षिगण निवास करते हैं। एक दिन रात बीत जाने पर कुमुदिनीनायक चन्द्रमा जब अस्ताचल की ओर चले गये तब लघुपतनक नाम का कौआ उठा और दूसरे यमराज की तरह आते हुए एक व्याध को देखा। उसको देखकर सोचने लगा कि 'आज प्रातःकाल ही अनिष्ट दर्शन हुआ, न जाने क्या हानि होगी।'' ऐसा कहकर उसी के पीछे-पीछे घबराया हुआ चल पड़ा।

यतः

शोकस्थानसहस्त्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्।। 3।। मित्रलाभः

क्योंकि – शोक के हजारों स्थान हैं, भय के भी सैकड़ों स्थान हैं, मूर्ख को इसकी अधिक चिन्ता रहती है, पण्डित इस पर ध्यान नहीं देते।

अथ तेन व्याधेन तण्डुलकणान्विकीर्य जालं विस्तीर्णम्। स च प्रच्छन्नो भूत्वा स्थितः। तस्मिन्नेव काले चित्रग्रीवनामा कपोतराजः सपरिवारो वियति विसर्पंस्तांस्तण्डुलकणानवलोकयामास। ततः कपोतराजस्तण्डुलकणलुब्धान्कपोतान्प्रत्याह – "कुतोऽत्र निर्जने वने तण्डुलकणानां सम्भवः। तन्निरूप्यतां तावत्। भद्रमिदं न पश्यामि। प्रायेणानेन तण्डुलकणलोभेनास्माभिरपि तथा भवितव्यम्।

अनुवाद :– इसके बाद उस बहेलिये ने चावल के कणों को बिखरा कर अपना जाल फैलाया और वह कहीं छिपकर बैठ गया। उसी समय चित्रग्रीव नामक कबूतरों के राजा ने अपने परिवार के साथ आकाश में जाते हुए उन चावल के कणों को देखा। तब चित्रग्रीव तण्डुलकण के लोभी कबूतरों से बोला–इस निर्जन वन में चावल के कणों की सम्भावना

कैसी? इसको विचारना चाहिये। मैं इसमें कल्याण नहीं समझता हूँ। प्रायः इन चावल के कणों के लोभ से हम लोगों को वैसा ही होना पड़ेगा।

''कङ्कणस्य तु लोभेन मग्नः पङ्के सुदुस्तरे।
वृद्धव्याघ्रेण सम्प्राप्तः पथिकः स मृतो यथा''।

मित्रलाभ पद्य सं०–5

जैसे एक पथिक कङ्कण के लोभ से कठिन कीचड़ में फंसा और बूढे व्याघ्र ने पकड़कर उसे मार डाला।

कपोता ऊचुः – कथमेतत्? सोऽब्रवीत् –

कबूतर बोले – यह कैसे? इस पर कपोतराज चित्रग्रीव ने '**व्याघ्र-पथिक**' कथा विस्तार से सुना दी। इस उपकथा की कहानी– इस प्रकार है कि किस प्रकार बाघ ने सोने के कंगन को दिखाकर पथिक को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। पथिक बिना सोच-विचार किये लोभवश कीचड़ से युक्त तालाब में स्नान करने चला जाता है, और तालाब में घुसते ही कीचड़ में फंस गया और निकल न सका। उसको कीचड़ में फंसा देखकर बूढे बाघ ने अच्छा मैं निकालता हूँ, ऐसा कहकर धीरे-धीरे उसके पास जाकर उसको पकड़ लिया, और वह पथिक विचारने लगा –

न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनः।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः ।।17।।

दुर्जन को सज्जन बनाने के लिये धर्मशास्त्र या वेद का पढ़ना कारण नहीं हो सकता, क्योंकि सज्जन का स्वभाव ही कुछ और होता है, जैसे गाय का दूध स्वभाव ही से मीठा होता है।

इसलिये मैंने यह अच्छा नहीं किया कि हिंसक जन्तु पर विश्वास किया। कहा भी है –

नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां शृङ्गिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ।।19।।

नदियों का, हाथ में शस्त्र लिये मनुष्यों का, नख और सींग वाले जन्तुओं का, स्त्रियों का और राजकुल पर विश्वास कभी नहीं करना चाहिए।

अपरञ्च –

सर्वस्य हि परीक्ष्यन्ते स्वभावा नेतरे गुणाः।
अतीत्य हि गुणान्सर्वान्स्वभावो मूर्ध्नि वर्तते।। 20 ।।

सब लोगों के स्वभाव की ही परीक्षा की जाती है और गुणों की नहीं। क्योंकि सब गुणों की अपेक्षा स्वभाव ही सिर पर रहता है, अर्थात् सर्वोपरि है।

वह पथिक ऐसा सोच ही रहा था, कि बाघ ने उसको मारकर खा डाला, इसीलिये मैंने कहा था कि '**कङ्कण के लोभ से**' इत्यादि। इसलिये भली-भाँति बिना विचारे कोई काम नहीं करना चाहिए। क्योंकि–

सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः।।
सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्।।22।।

भली-भाँति पका हुआ अन्न, बुद्धिमान् पुत्र, अच्छी तरह शासित स्त्री, अच्छी तरह से सेवित राजा, सोच-विचारकर कही गई बात, विचार कर किया हुआ काम – ये सब बहुत दिन तक भी बिगड़ते नहीं।

एतद्वचनं श्रुत्वा कश्चित्कपोतः सदर्पमाह – आः किमेवमुच्यते?

यह सुनकर कोई एक कबूतर बड़े घमण्ड से बोला। ओह, यह क्या कहते हो?

वृद्धानां वचनं ग्राह्यमापत्काले ह्युपस्थिते।।
सर्वत्रैवं विचारेण भोजनेऽप्यप्रवर्त्तनम् ।।23।।

आपत्ति के समय में वृद्धों का वचन मानना चाहिये। सर्वत्र ऐसा विचार करने से भोजन में भी प्रवृत्ति नहीं हो सकती।

कहा भी है –

ईर्ष्यी घृणीत्वसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपयोजीवी च षडेते दुःखभागिनः ।।25।।

ईर्ष्या करने वाला, घृणा करने वाला, असन्तोषी, क्रोधी, सदा सन्देह करने वाला, दूसरे के आश्रय से जीने वाला – ये छः प्रकार के मनुष्य सदा दुःखी रहते हैं।

यह सुनकर सब कबूतर वहाँ बैठ गये।

असम्भवं हेममृगस्य जन्म, तथापि रामो लुलुभे मृगाय।।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले, धियोऽपि पुंसां मलिनीभवन्ति।। 28 ।।

अर्थात् सोने के मृग का होना यद्यपि असम्भव है, तथापि रामचन्द्र मृग के लोभ में पड़े, प्रायः विपत्ति सन्निहित होने पर मनुष्य की बुद्धि भी मलिन हो जाती है।

अनन्तरं सर्वे जालेन बद्धा बभूवुः। ततो यस्य वचनात्तत्रावलम्बितास्तं सर्वे तिरस्कुर्वन्ति।

अनुवाद : – इसके बाद वे सब जाल में फंस गये, तब जिस कबूतर के कहने से सब वहाँ बैठे थे, उसका सब अनादर करने लगे।

उक्तञ्च –

न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिद्धे कार्ये समं फलम्।
यदि कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते 29 ।।

कहा भी है –

किसी कार्य में सबसे आगे नहीं होना चाहिये क्योंकि कार्य की सिद्धि होने पर फल में समानता ही रहती है, और यदि दैवात् कार्य में कोई विघ्न हुआ तो अगुआ ही मारा जाता है।

तस्य तिरस्कारं श्रुत्वा चित्रग्रीव उवाच – नायमस्य दोषः।

उस कबूतर के अनादर को देखकर चित्रग्रीव बोला – यह इसका दोष नहीं है।

यतः

आपदामापतन्तीनां हितोऽप्यायाति हेतुताम्।
मातृजङ्घा हि वत्सस्य स्तम्भीभवति बन्धने।। 31।।

क्योंकि – अपना मित्र भी आने वाली आपत्ति का कारण हो जाता है। जैसे – बछड़े के बाँधने के लिये उसकी माता की जङ्घा ही खूँटे (स्तम्भ) का काम देती है।

विपत्काले विस्मय एव कापुरुषलक्षणम्। तदत्र धैर्यमवलम्ब्य प्रतीकारश्चिन्त्यताम्।

विपत्ति में घबराना ही कायर पुरुषों का चिह्न है। इसलिये धीरज धारण कर इसका उपाय सोचना चाहिये।

यतः

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।। 33।।

क्योंकि विपत्ति में धीरता, उन्नति में नम्रता, सभा में बोलने की शक्ति, युद्ध में वीरता, कीर्ति की इच्छा, शास्त्राभ्यास का व्यसन – ये सब गुण महात्माओं के स्वभावसिद्ध हैं।

इदानीमप्येवं क्रियताम्। सर्वैरेकचित्तीभूय जालमादायोड्डीयताम्।

अनुवाद :– इस समय हम लोग ऐसा करें कि, सब लोग एक चित्त होकर जाल लेकर उड़ जायें।

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका।

तृणैर्गुणत्वमापन्नैर्बध्यन्ते मत्तदन्तिनः।। 36।।

क्योंकि – छोटी-छोटी वस्तु भी मिलकर कार्यसाधक हो सकतीं हैं। तृण भी जब एकत्र होकर रस्सी बन जाते हैं, तब बड़े-बड़े मत्त हस्तियों को बाँध देते हैं।

इसके बाद ये सभी पक्षी मिलकर जाल को लेकर उड़ गये। पुनः अब क्या करना चाहिए? इस पर चित्रग्रीव बोला –

"माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्त्रितयं हितम्।

कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः।। 39 ।।

माता, पिता और मित्र – ये तीनों स्वभाव से ही हित चाहते हैं; और दूसरे कार्यवश हित चाहते हैं।

इसके बाद चित्रग्रीव अपने मित्र हिरण्यक के समीप गया।

तदस्माकं मित्रं हिरण्यको नाम मूषिकराजो गण्डकीतीरे चित्रवने निवसति। सोऽस्माकं पाशांश्छेत्स्यति। इत्यालोच्य सर्वे हिरण्यकविवरसमीपं गताः। हिरण्यकश्च सर्वदाऽपायशङ्कया शतद्वारं विवरं कृत्वा निवसति। ततो हिरण्यकः कपोतावपातभयाच्चकितस्तूष्णीं स्थितः। चित्रग्रीव उवाच – "सखे हिरण्यक! किमस्मान्न संभाषसे!" ततो हिरण्यकस्तद्वचनं प्रत्यभिज्ञाय ससंभ्रमं बहिर्निःसृत्याऽब्रवीत् – "आः पुण्यवानस्मि, प्रियसुहृन्मे चित्रग्रीवः समायातः"।

अनुवाद : – तो हमारा मित्र हिरण्यक नाम का चूहों का राजा गण्डकी नदी के तट पर चित्रवन में रहता है। वह अपने दाँतों से हम लोगों के फाँसों को काटेगा। ऐसा सोचकर सब लोग हिरण्यक के विवर (बिल) के पास गये। हिरण्यक भी डर के मारे अपने बिल में सौ द्वार बनाकर रहता था। तब हिरण्यक कबूतरों के गिरने के शब्द से आश्चर्य में पड़ गया और मारे डर के चुपके से बैठ गया। चित्रग्रीव बोला – मित्र हिरण्यक! हम लोगों से क्यों नहीं बोलते? तब हिरण्यक उसके वचन को पहचान कर शीघ्र बाहर आकर बोला। आज मेरे पुण्य का

पाशबद्धांश्चैतान्दृष्ट्वा सविस्मयः क्षणं स्थित्वोवाच–सखे! किमेतत् चित्रग्रीवोऽवदत् – सखे! अस्माकं प्राक्तनजन्मकर्मणः फलमेतत्।

अनुवाद :– तब हिरण्यक इनको फाँस में पड़ा देखकर आश्चर्य में पड़ गया। फिर थोड़ी देर में बोला – मित्र! यह क्या हुआ है? चित्रग्रीव बोला – मित्र! यह हमारे पूर्व जन्म के कर्म का फल है।

यह सुनकर हिरण्यक चित्रग्रीव का बन्धन काटना चाहता है; लेकिन चित्रग्रीव ने सर्वप्रथम उससे अपने आश्रितों का बन्धन काटने के लिये आग्रह किया। हिरण्यक ने स्वयं को कमजोर एवं दाँत भी कोमल बताया। फिर भी चित्रग्रीव बोला – ठीक है तो भी यथाशक्ति इन आश्रितों का बन्धन काटिये।

हिरण्यकेनोक्तम् – 'आत्मपरित्यागेन यदाश्रितानां परिरक्षणं तन्न नीतिविदां सम्मतम्।

यतः

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ।। 43 ।।

हिरण्यक ने कहा – "अपनी हानि कर अपने आश्रितों की रक्षा करना नीति जानने वालों को सम्मत नहीं है।''

क्योंकि – आपत्ति-समय के लिये धन की रक्षा करनी चाहिए, धन से स्त्री की रक्षा करनी चाहिए, स्त्री और धन दोनों से सदा अपनी रक्षा करनी चाहिए।

चित्रग्रीव उवाच – "सखे! नीतिस्तावदीदृश्येव किन्त्वहमस्मदाश्रितानां दुःखं सोढुं सर्वथाऽसमर्थस्तेनेदं ब्रवीमि।

अनुवाद :– चित्रग्रीव बोला – नीति तो ऐसा ही है; परन्तु मैं अपने अधीन रहने वालों का दुःख सहने में सर्वथा असमर्थ हूँ।

इसलिये ऐसा कह रहा हूँ। एक और भी विशेष कारण यह है कि –

जातिद्रव्यगुणानां च साम्यमेषां मया सह।
मत्प्रभुत्वफलं ब्रूहि कदा किं तद्भविष्यति ।। 46 ।।

ये जाति, द्रव्य तथा गुण में भी मेरे बराबर हैं तो फिर मेरे इनके मालिक बनने का क्या फल होगा? और कब होगा? यह बतलाइये।

शरीरस्य गुणानां च दूरमत्यन्तमन्तरम्।
शरीरं क्षणविध्वंसि कल्पान्तस्थायिनो गुणाः।। 50।।

क्योंकि शरीर और गुणों में बहुत बड़ा भेद है, शरीर तो क्षण ही में नष्ट हो जाता है, परन्तु गुण प्रलय काल तक रहते हैं।

इत्याकर्ण्य हिरण्यकः प्रहृष्टमनाः पुलकितः सन्नब्रवीत् – "साधु मित्र! साधु! अनेनाश्रितवात्सल्येन त्रैलोक्यस्यापि प्रभुत्वं त्वयि युज्यते''। एवमुक्त्वा तेन सर्वेषां बन्धनानि छिन्नानि। ततो हिरण्यकः सर्वान्सादरं 'सम्पूज्याह – 'सखे? चित्रग्रीव!' सर्वथात्र जालबन्धनविधौ दोषमाशङ्क्यात्मन्यवज्ञा न कर्त्तव्या।

अनुवाद :– यह सब सुनकर हिरण्यक प्रसन्न मन से पुलकित होकर बोला, धन्य मित्र! धन्य! आश्रितों के ऊपर तुम्हारे इस प्रेम के लिये तुम तीनों लोकों के स्वामी होने योग्य हो। ऐसा कहकर उसने सब कबूतरों के बन्धनों को काट डाला। इसके बाद हिरण्यक सबकी

आदरपूर्वक पूजा कर बोला – मित्र चित्रग्रीव! इस जाल के फंस जाने में अपना दोष समझ कर अपनी आत्मा की निन्दा न करनी चाहिए।

इति प्रबोध्यातिथ्यं कृत्वाऽऽलिङ्ग्य च चित्रग्रीवस्तेन सम्प्रेषितो यथेष्टदेशान्सपरिवारो ययौ। हिरण्यकोऽपि स्वविवरं प्रविष्टः।

अनुवाद : – यों चित्रग्रीव को समझाकर अतिथि-सत्कार करके हिरण्यक ने आलिङ्गन किया और उनको विदा किया। चित्रग्रीव को जहाँ जाना था, वहाँ सपरिवार गया, हिरण्यक भी बिल में घुस गया।

यानि कानि च मित्राणि कर्त्तव्यानि शतानि च।।
पश्य मूषिकमित्रेण कपोता मुक्तबन्धनाः ।।54।।

अर्थात् – प्राणिमात्र को सैकड़ों मित्र बनाने चाहिये, देखो जैसे मित्र चूहे ने कबूतरों को बन्धन से छुड़ाया।

इस तरह आप 'चित्रग्रीव एवं हिरण्यक' की मित्रता की कथा से परिचित हो चुके हैं कि 'मित्रता' किन दो व्यक्तियों के बीच, कहाँ और कैसे की जाये? यानी ऐसी मित्रता बनानी चाहिये जो विपत्ति में सहायता करे। इससे आप भली-भाँति परिचित हो चुके हैं कि किस प्रकार मूषकराज हिरण्यक ने विपत्ति में यानी जाल में फंसे अपने मित्र कपोतराज चित्रग्रीव को छुड़ाया। साथ ही दैनिक व्यवहार एवं सांसारिकता से सम्बद्ध अनेक नीतिशास्त्रोपदेश से भी अवगत हो चुके हैं।

इसके आगे 'सियार और मृग' की कथा आती है, जिसमें यह बताया गया है कि भक्ष्य और भक्षक प्राणी के बीच की मित्रता विपत्ति का कारण होता है।

कथा इस प्रकार आरम्भ होती है –

अथ लघुपतनकनामा काकः सर्ववृत्तान्तदर्शी साश्चर्यमिदमाह – "अहो हिरण्यक! श्लाघ्योऽसि। अतोऽहमपि त्वया सह मैत्रीमिच्छामि। अतो मां मैत्र्येणाऽनुग्रहीतुमर्हसि"। एतच्छ्रुत्वा हिरण्यकोऽपि विवराभ्यन्तरादाह – 'कस्त्वम्?'। स ब्रूते "लघुपतनकनामा वायसोऽहम्"। हिरण्यको विहस्याह– का त्वया सह मैत्री"?

अनुवाद :– इसके बाद लघुपतनक नाम का कौआ यह सब वृत्तान्त (चित्रग्रीव तथा हिरण्यक के बीच की मित्रता) देखकर आश्चर्य में पड़कर बोला–''ओ हिरण्यक? तुम प्रशंसनीय हो। इसलिये मैं भी आपके साथ मित्रता करना चाहता हूँ, मुझे भी मित्र बनाकर अनुगृहीत करो''। यह सुनकर हिरण्यक बिल के भीतर से बोला – तुम कौन हो?

वह बोला – "मैं लघुपतनक नाम का कौआ हूँ''। हिरण्यक हँसकर बोला–'" तुम्हारे साथ मित्रता कैसी?''

यतः

यद्येन युज्यते लोके बुधस्तत्तेन योजयेत्।
अहमन्नं भवान् भोक्ता कथं प्रीतिर्भविष्यति। 55।।

क्योंकि – जिसका जिसके साथ मेल हो सकता है, पण्डित को चाहिए कि उन दोनों का मेल करा दे। मैं अन्न (आप का भक्ष्य) हूँ, आप मेरे भक्षक हैं, दोनों की प्रीति कैसे हो सकती है?

अपरञ्च

भक्ष्यभक्षकयोः प्रीतिर्विपत्तेरेव कारणम्।

शृगालात्पाशबद्धोऽसौ मृगः काकेन रक्षितः ।।56।।

और भी – भक्ष्य और भक्षक का प्रेम विपत्ति का कारण होता है; सियार के कहने से मृग जाल में फंस गया, परन्तु कौए ने उसकी रक्षा की।

वायसोऽब्रवीत्, कथमेतत्–? हिरण्यकः कथयति –

कौवा बोला, यह कैसे? हिरण्यक कहने लगा –

अस्ति मगधदेशे चम्पकवती नामारण्यानी। तस्यां चिरान्महता स्नेहेन मृगकाकौ निवसतः। स च मृगः स्वेच्छया भ्रामयन्हृष्टपुष्टाङ्गः केनचिच्छृगालेनाऽवलोकितः। तं दृष्ट्वा शृगालोऽचिन्तयत् – 'आः कथमेतन्मांसं सुललितं भक्षयामि? भवतु, विश्वासं तावदुत्पादयामि।' इत्यालोच्योपसृत्याब्रवीत् – "मित्र! कुशलं ते?" मृगेणोक्तम्। कस्त्वम्–'स ब्रूते – "क्षुद्रबुद्धिनामा जम्बुकोऽहम्। अत्रारण्ये बन्धुहीनो मृतवन्निवसामि। इदानीं त्वां मित्रमासाद्य पुनः सबन्धुर्जीवलोकं प्रविष्टोऽस्मि। अधुना तवाऽनुचरेण मया सर्वथा भवितव्यम्"। मृगेणोक्तम् – "एवमस्तु"। ततः पश्चादस्तं गते सवितरि भगवति मरीचिमालिनि तौ मृगस्य वासभूमिं गतौ। तत्र चम्पकवृक्षशाखायां सुबुद्धिनामा काको मृगस्य चिरमित्रं निवसति। तौ दृष्ट्वा काकोऽवदत् – "सखे चित्राङ्ग! कोऽयं द्वितीयः"। मृगो ब्रूते – जम्बुकोऽयम्। अस्मत्सख्यमिच्छन्नागतः। काको ब्रूते– "मित्र! अकस्मादागन्तुना सह मैत्री न युक्ता"।

अनुवाद :– मगध देश में चम्पकवती नाम का एक बड़ा जंगल है, वहाँ पुराने मित्र मृग और कौवा बड़े प्रेम से रहते थे, वह मृग बहुत हृष्ट पुष्ट था और जंगल में इधर-उधर घूम रहा था कि एक सियार ने उसे देखा, देखकर वह सियार सोचने लगा कि – ओह। इसका यह सुन्दर मांस मैं कैसे खाऊँ? अच्छा तब तक विश्वास उत्पन्न कराऊँ। ऐसा विचार कर पास जाकर बोला – "मित्र! कहिये, कुशल तो है? मृग ने कहा – तुम कौन हो? वह बोला – मैं सियार हूँ, मेरा नाम क्षुद्रबुद्धि है। इस वन में मैं मित्रों से रहित मरे की तरह पड़ा रहता हूँ। इस समय आपको मित्र पाकर फिर अपने बन्धु-बान्धव के साथ मानो जीवलोक में प्रविष्ट हो गया हूँ। अब मैं सब प्रकार से आपका अनुचर बनूंगा। मृग ने कहा ''अच्छा ऐसा ही सही''। इसके बाद मरीचिमाली भगवान् सूर्य जब अस्ताचल पर चले गये, तब वे दोनों मृग की वासभूमि पर गये। वहाँ चम्पक वृक्ष की शाखा पर मृग का पुराना मित्र सुबुद्धि नाम का कौवा रहता था। उन दोनों को देखकर कौवा बोला – मित्र चित्राङ्ग! यह दूसरा कौन है? मृग बोला – यह सियार है, मेरी मित्रता के लिये आया है। कौवा बोला – मित्र! अचानक आये हुए प्राणी से मित्रता नहीं करनी चाहिये।

तथा चोक्तम् –

अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।

मार्जारस्य हि दोषेण हतो गृद्धो जरद्गवः।। 57।।

कहा भी है – जिसका कुल और स्वभाव न मालूम हो, उसको अपने पास ठहरने नहीं देना चाहिये। क्योंकि बिलाव के दोष से जरद्गव नाम का गिद्ध मारा गया। अतः मित्रता अचानक कदापि नहीं करनी चाहिए।

i) निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तरों पर सही (√) चिह्न लगाइए :

क) 'हितोपदेश' में वर्णित राजा का नाम है। (सुदर्शन/धर्मदर्शन)

ख) राजपुत्रों को शिक्षा देने का उत्तरदायित्व लिया। (विष्णुशर्मा ने/नारायण पण्डित ने)

ग) कपोतों के राजा का नाम क्या था? (चित्रग्रीव/लघुपतनक)

घ) 'हिरण्यक' क्या था? (चित्रग्रीव का मित्र/दुश्मन)

ii) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

क) सेमल का पेड़ ..... नदी के तट पर था।

ख) कौए का नाम ..... था।

ग) बूढे बाघ ने ..... को कङ्कण के लोभ में फंसाया।

घ) ..... 'सोने के मृग' के लोभ में फंसे थे।

ङ) चूहों का राजा ..... जो ..... नदी के किनारे रहता था।

अभ्यास प्रश्न 4

i) कपोतराज चित्रग्रीव एवं हिरण्यक (चूहों के राजा) की कथा को संक्षेप में लिखते हुए नीतिशास्त्रोपदेश को लिखिए।

ii) 'व्याघ्र-पथिक' उपकथा के नीतिवाक्य को लिखिए।

ii) 'चूहों के राजा' (हिरण्यक) ने किस प्रकार सच्ची मित्रता निभायी? इसे दस वाक्यों में लिखिए।

11.6 सारांश

- कथा-साहित्य और उसके भेदों, साथ ही नीतिकथा के विषय से अब आप भली-भाँति परिचित हो चुके हैं।
- नीतिकथा एवं लोककथा में भेद, नीतिकथा की विशेषताएँ तथा इसकी उत्पत्ति आदि की चर्चा अब, आप भली-भाँति कर सकेंगे।
- 'हितोपदेश' के रचनाकार नारायण पण्डित के जीवनवृत्त, कृतियों एवं उनकी शैली से अब आप भली-भाँति परिचित हो चुके हैं।
- 'हितोपदेश' कथा की सामान्य जानकारी के साथ ही 'मित्रलाभ' परिच्छेद में वर्णित नीतिकथा के रचना-सौन्दर्य से भी अब आप परिचित हो चुके हैं।

11.7 शब्दावली

नीतिकथा = जिस कथा में नीतिशास्त्र की शिक्षा मिलती है।

लोककथा = लोक में प्रचलित वह कथा जिसमें मनोरञ्जन के तत्त्व की प्रधानता होती है।

अविच्छिन्न = अलग न होना।

समायोजन = संग्रह, एकत्रित करना।

वश्य = आज्ञाकारी।

अवलम्ब = सहारा, आश्रय।

दुस्तर = कठिन, असाध्य।

मूढ़ = मूर्ख।

शृंगिणां = सींग वाले जन्तुओं का।

मूर्ध्नि = सिर पर।

दारा = पत्नी।

पाश = फाँस, बन्धन।

11.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

'हितोपदेशः' – अनु० पं० अम्बिका प्रसाद शर्मा, प्रका० भार्गव पुस्तकालय, वाराणसी

संस्कृत साहित्य की रूपरेखा – पाण्डेय एवं व्यास, प्रका० – साहित्य निकेतन, कानपुर

बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) (क) पञ्चतन्त्र (ख) दूसरा (ग) ऋग्वेद (घ) छान्दोग्योपनिषद्।

ii) (क) विदुर (ख) जातक (ग) दो (घ) भरहुत।

अभ्यास प्रश्न 1

इन प्रश्नों का उत्तर आप स्वयं लिखिए।

बोध प्रश्न 2

i) (क) नारायण पण्डित (ख) हितोपदेश (ग) नारायण पण्डित (घ) बंगाल

ii) (क) धवलचन्द्र (ख) 1373 ई० (ग) पद्य (घ) पद्य।

अभ्यास प्रश्न 2

i) महाभारत, जातकग्रन्थ, कामन्दकीय नीतिसार आदि।

ii) इस प्रश्न का उत्तर आप स्वयं लिखिए।

बोध प्रश्न 3

i) (क) सूक्ति में (ख) त्रिवर्ग उपदेश (ग) दो (घ) 43

ii) (क) 24 (ख) पञ्चतन्त्र (ग) मित्रलाभ (घ) विग्रह।

अभ्यास प्रश्न 3

(i) इस प्रश्न के उत्तर के लिए 11.4 देखें

(ii) इस प्रश्न के उत्तर के लिए भी 11.4 का 'मित्रलाभ' परिच्छेद देखें।

बोध प्रश्न 4

(i) (क) सुदर्शन (ख) विष्णुशर्मा ने (ग) चित्रग्रीव (घ) चित्रग्रीव का मित्र।

(ii) (क) गोदावरी (ख) लघुपतनक (ग) पथिक (घ) रामचन्द्र (ङ)हिरण्यक,गण्डकी

अभ्यास प्रश्न 4

(i), (ii) तथा (iii) इन तीनों अभ्यास प्रश्नों के उत्तर के लिए 11.5 देखें।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

MPDD-IGNOU/P.O. 4.2K/August, 2019

ISBN : 978-93-89200-35-5